दंसण मूलो धम्मो

आत्मधर्म

शाश्वत सुखका मार्गदर्शक आध्यात्मिक मासिक

वीर सं० २४९६ तंत्री-पुरुषोत्तमदास शिवलाल कामदार, भावनगर वर्ष २६ अंक नं० ५

वीतरागी क्षमा

जिसप्रकार दीपक के प्रकाश में कोई शुभ हो या अशुभ हो, परंतु दीपक उनके प्रति राग या द्वेष नहीं करता, वह तो अपने प्रकाशकस्वभाव से प्रकाशित होता रहता है। उसीप्रकार ज्ञान का स्वभाव स्व-परप्रकाशक है; उसके ज्ञानप्रकाश में निंदा के शब्द परिणमित हों या प्रशंसा के, परंतु ज्ञानप्रकाश का स्वभाव उनमें द्वेष या राग करने का नहीं है; वह तो अपने प्रकाशक स्वभाव में ही वर्तता है।—ऐसे ज्ञानस्वभाव को जानने से जीव उपशमभाव को प्राप्त होता है और ऐसे उपशमभाव का अनुभव होने पर क्रोधादि का अभाव हो गया, वही उत्तम अर्थात् वीतरागी क्षमा है।—ऐसी क्षमा निराकुल आनंद देनेवाली है।

चारित्र

ज्ञान

दर्शन

श्री दिगंबर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ (सौराष्ट्र)

अक्टूबर : १९७० वार्षिक मूल्य ३) रुपये (३०५) एक अंक २५ पैसा [भाद्रपद : २४९६

उत्तम क्षमा ग्रहो रे भाई!

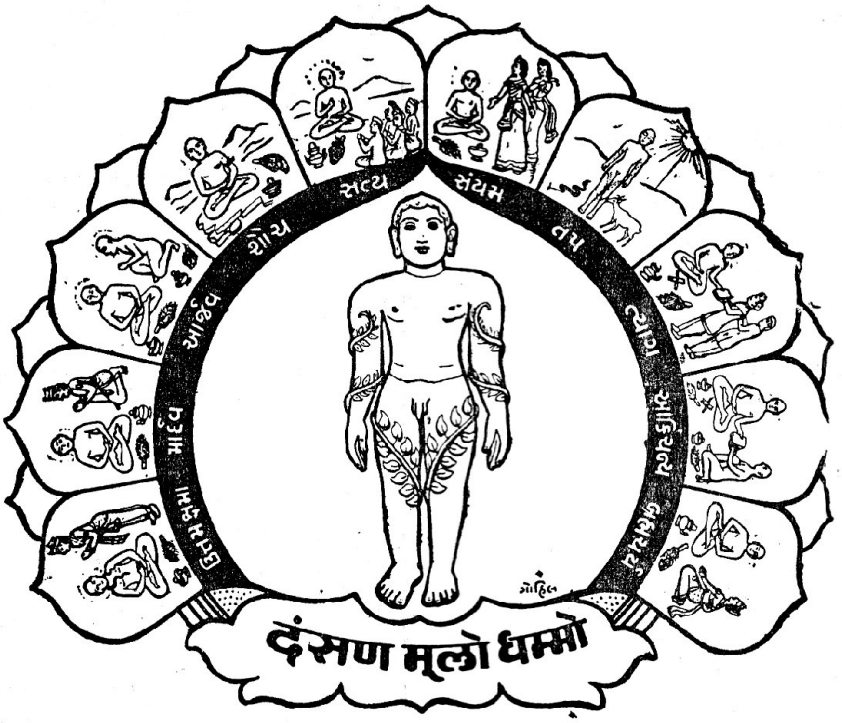

उत्तमक्षमादि दस धर्मों की परि-उपासना का नाम पर्यूषण

१. पीडें दुष्ट अनेक, बांध-मार बहुविधि करें, धरिये क्षमा विवेक, कोप न कीजे पीतमा।
२. मान महा विषरूप, करे नीचगति जगत में, कोमल सुधा अनूप, सुख पावे प्राणी सदा।
३. कपट न कीजे कोय, चोरन के पुर न वसे, सरल सुभावी होय, ताके घर बहु संपदा।
४. कठिन वचन मत बोल, परनिंदा अरु जूठ तज, सांच जवाहर खोल, सतवादी जग में सुखी।
५. धरि हिरदे संतोष, करो तपस्या देहसों, शौच सदा निरदोष, धरम बडो संसार में।
६. काय छहों प्रतिपाल, पंचेन्द्री मन वश करो, संयम रतन संभाल, विषय चोर बहु फिरत है।
७. तप चाहें सुरराय, करमशिखर को वज्र है, द्वादशविधि सुखदाय, क्यों न करे निजशक्तिसम।
८. दान चार परकार, चार संघ को दीजिये, धन बिजली उनहार नरभव लाहो लीजिये।
९. परिग्रह चोबीस भेद, त्याग करें मुनिराजजी, तृष्णा भाव उछेद, घटती जान घटाइए।
१०. शील वाड नौ राख, ब्रह्मभाव अंतर लखो, करि दोनों अभिलाष करो सफल नरभव सदा।

दशलक्षणधर्मधारक रत्नत्रयवंत निर्ग्रंथगुरु मुनिभगवंतों को नमस्कार

शाश्वत सुख का मार्गदर्शक मासिकपत्र

आत्मधर्म

संपादक : श्री ब्र० गुलाबचंद जैन

अक्टूबर : १९७० ☆ भाद्रपद : वीर नि० सं० २४९६, वर्ष २६वाँ ☆ अंक : ५

— धर्म —

❀ धर्मप्राप्ति का उल्लास, यही सच्चा वात्सल्य।

❀ धर्मप्राप्ति का उग्र उद्यम, यही उत्तम उद्योतन।

❀ धर्म द्वारा परिणति के प्रवाह का स्वसन्मुख वेग, यही सच्चा संवेग।

❀ धर्म की आराधना के परिणाम में परभाव का अभाव, यही निर्वेदता।

❀ धर्म में चित्त का जुड़ना, यही जीव की सच्ची अनुकंपा।

❀ धर्मरूप सम्यक्त्व-परिणति, यही परम आस्तिकता।

❀ धर्मरूप निर्दोष परिणति, यही निःशंकता।

❀ धर्म द्वारा स्वतत्त्व की अनुभूति में प्रवेश, यही निर्भयता।

❀ धर्म द्वारा गुणों का विकास, यही महा प्रभावना।

❀ धर्म द्वारा स्वतत्त्व में स्थिति, यही स्थितिकरण।

❀ धर्मरूप वीतराग परिणति, यही उत्तम क्षमादिक।

❀ धर्मरूप स्वसमयपना, यही रत्नत्रयरूप मोक्षमार्ग।

— इसप्रकार स्वभावधर्म में सर्वगुणों का समावेश है।

—ऐसे धर्म की हे जीव! तू उत्साह से आराधना कर।

हे जीव! उत्साहभाव से जिनमार्ग की आराधना कर

वीर भगवान के कहे हुए वीतरागमार्ग की प्रसिद्धि

[श्रावण कृष्णा एकम के प्रभात में विपुलाचल पर समवसरण में विराजमान वर्द्धमान तीर्थंकर के स्मरणपूर्वक, सोनगढ़ में आनंद-उल्लास भरा वातावरण था। दिव्यध्वनि का सार सुनने के लिये अनेक जिज्ञासु आज यहाँ एकत्रित हुए थे। प्रातः जिनमंदिर में वीरनाथ जिनेन्द्र की, सीमंधर जिनेन्द्र की तथा जिनवाणी माता की भक्तिपूर्वक पूजा हुई; तत्पश्चात् प्रवचन के प्रारंभ में वीरनाथ की दिव्यध्वनि का इतिहास सुनाते हुए पूज्य स्वामीजी ने जो भवभीना प्रवचन किया, वह जिनमार्ग में उत्साहित करनेवाला है, उसका सार यहाँ दिया गया है।]

आज राजगृही में विपुलाचल पर्वत पर महावीर परमात्मा की दिव्यवाणी प्रथम बार खिरी। आज श्रावण कृष्णा एकम है, शासन के हिसाब से आज नया वर्ष है। भगवान को केवलज्ञान तो ६६ दिन पहले वैशाख सुदी १० को ऋजुवालिका नदी के किनारे (सम्मेदशिखर से १० मील दूर) हुआ था; परंतु वहाँ गणधर होनेयोग्य जीव की उपस्थिति नहीं थी; वाणी की उत्पत्ति का योग नहीं था, श्रोताओं की इसप्रकार की योग्यता भी नहीं थी, इसलिये ६६ दिन तक वाणी नहीं छूटी। वाणी तो छूटे और जीव धर्म प्राप्त नहीं करें—ऐसा नहीं होता; तीर्थंकर की वाणी छूटे और धर्म प्राप्त करनेवाले जीव नहीं हों, ऐसा नहीं बनता। भगवान की वाणी धर्म-वृद्धि का ही कारण है। पूर्व में धर्मवृद्धि के भाव में बाँधी हुई वाणी अन्य जीवों को धर्म की वृद्धि का ही निमित्त है। ६६ दिन पश्चात् आज (श्रावण कृष्णा १ को) जब गौतम-इन्द्रभूति महाराज प्रभु के समवसरण में आये तो प्रभु का दिव्य-मुख देखते ही उनका मान नष्ट हो गया, प्रभु के पादमूल में पंचमहाव्रत धारण किये तथा मुनि हुये; भगवान की दिव्यवाणी प्रथम बार आज छूटी,

गौतमस्वामी उस वाणी को झेलकर गणधर हुये और वह वाणी १२ अंक के रूप में गूँथी। उसी वाणी की परंपरा में ये षट्खंडागम आदि रचे गये हैं, उसीप्रकार समयसार, प्रवचनसार, अष्टपाहुड़ आदि परमागम भी जिनवाणी सुनकर कुन्दकुन्दाचार्यदेव द्वारा रचे गये हैं। कुन्दकुन्दस्वामी ने तो इस पंचम काल में विदेहक्षेत्र जाकर तीर्थंकर परमात्मा की दिव्यवाणी साक्षात् सुनी थी।

वे कुन्दकुन्दस्वामी इस अष्टप्राभृत में कहते हैं कि हे जीव! अंतर में अपने विशुद्ध आत्मा को ध्येय बनाकर सम्यग्दर्शन प्रगट कर, वही मोक्ष की सीढ़ी है। सम्यक्त्व की आराधनारहित जीव संयम का चाहे जितना आचरण करता हो तो भी इस निर्वाण को प्राप्त नहीं होता। इसलिये प्रथम निर्मोहरूप से सम्यग्ज्ञानसहित शुद्ध सम्यक्त्व की आराधना करनी चाहिये।

जो जीव सम्यक्त्व के द्वारा आत्मा को आराधता है, वह जीव कैसा होता है, यह बात यहाँ चारित्रप्राभृत गाथा ११-१२ में कहते हैं—

जो जीव निर्मोहरूप से जिन-सम्यक्त्व को आराधता है, वह जीव वात्सल्य, विनय, अनुकम्पा, सुपात्रदान में दक्षता, मार्ग के गुणों की प्रशंसा, उपगूहन, धर्मरक्षा और आर्जवभाव—ऐसे लक्षणों से लक्षित होता है।

जिन-सम्यक्त्व अर्थात् भगवान जिनदेव ने शुद्धात्मा के श्रद्धानरूप जैसा सम्यक्त्व कहा है, वैसे जिन-सम्यक्त्व की आराधना करनेवाले जीव को धर्मात्मा के प्रति वात्सल्य होता है। भगवान जिनदेव कथित वीतरागमार्ग के अतिरिक्त अन्य कोई कुमार्ग के देवी-देवता को जो मानता है, वह तो जिनमार्ग का विराधक है, उसको तो जिन-सम्यक्त्व की आराधना नहीं होती। वीर प्रभु के वीतराग-मार्ग का आराधक जीव निर्दोष वात्सल्यपूर्वक धर्म को साधता है। जिसप्रकार गाय को अपने बछड़े के प्रति स्वाभाविकरूप से वात्सल्य होता है, उसीप्रकार धर्मात्मा को धर्मात्मा के प्रति, साधर्मी के प्रति स्वाभाविकरूप से प्रेम-वात्सल्य होता है। आनंदस्वभाव के प्रेम को जगाकर उसको जो साधता है, ऐसे सम्यक्त्ववंत जीव को धर्म के प्रति सहजरूप से उत्साह आता है, तथा जहाँ धर्म देखता है, वहाँ उसका वात्सल्य प्रगटरूप में उछलता ही है।

धर्म का प्रेम जिसको नहीं होता, उसको धर्म की आराधना कैसी? धर्मी को दूसरे विशेष धर्मात्मा के प्रति विनय-सत्कार-बहुमान होता हैं। रत्नत्रय में अपने से जो विशेष होता है, उसके प्रति बहुमान आता है, ईर्षा नहीं होती और उत्तम दान में वह दक्ष होता है, तथा उसे दु:खी जीवों

के प्रति अनुकम्पा होती है कि यह जीव जिनमार्ग के बिना दु:खी हो रहा है, जिनमार्ग को प्राप्त करने से ही जीव दु:ख से छूट सकता है, यह जीव जिनमार्ग को कैसे प्राप्त करे ? और दु:ख कैसे छूटे ?—ऐसा भाव धर्मी को आता है। धर्मी के अंतर में जिनमार्ग के गुणों की परम प्रशंसा होती है। अहो, ऐसा उत्तम जिनमार्ग, ऐसा निर्ग्रंथ मार्ग ही जगत में प्रशंसनीय है, धन्य है मेरा जीवन... कि ऐसा जिनमार्ग मुझको मिला। जिनमार्ग के मुनिवर वीतरागता का अपूर्व लाभ ले रहे हैं। अहो, धन्य मार्ग ! ऐसा अपूर्व मार्ग मुझको साधना है। इसप्रकार सम्यक्त्वी जीव उल्लासपूर्वक जिनमार्ग को साधता है; बारंबार उत्साह द्वारा उसकी प्रशंसा करता है।

अहो, निर्ग्रंथमार्ग के दिगम्बर मुनिवर धन्य हैं, वे केवलज्ञान के एकदम समीप वर्त रहे हैं; जगत से और शरीर से भी निस्पृह हैं तथा निज स्वरूप में परमलीन हैं; ऐसे मुनिवर वे स्वयं मोक्षमार्ग हैं; धन्य उनका जीवन! उनके दर्शन प्राप्त हों, वह भी धन्य हैं! इनकी दिगम्बर वीतरागदशा परम प्रशंसनीय है। जिसको ऐसे निर्ग्रंथ स्वरूप मोक्षमार्ग की प्रशंसा का भाव नहीं है तथा उसकी निंदा करता है, वह भी मिथ्यादृष्टि है। अहो, चैतन्य का परमसुख प्राप्त करने का यह उत्तम मार्ग... वह जगत में अजोड़ है। इस जिनपंथ में चलनेवाले को सम्यक्त्वादि गुणों की प्राप्ति होती है। चक्रवर्ती तथा इन्द्र भी इस मार्ग को ही आराधते हैं, इस प्रकार सम्यक्त्वी जिनमार्ग के गुणों की अत्यंत प्रशंसा करके उसका आदर करता है।

तथा सम्यक्त्व का आराधक जीव दूसरे धर्मात्मा के किंचित् दोष का उपगूहन करके उस दोष को दूर करता है, तथा साधर्मी को संकट आदि हो तो उसको दूर करके उसकी रक्षा करता है, धर्म की रक्षा करता है। अहो, जिस परम उत्तम मार्ग की आराधना मैं करता हूँ, उसी को यह जीव भी आराधते हैं, इसलिये यह मेरे साधर्मी हैं। इसप्रकार आदरपूर्वक धर्मात्मा की रक्षा करके उसको धर्म में स्थिर करता है। दूसरों को धर्म करता हुआ देखकर स्वयं प्रसन्न होता है कि अहो! यह जीव भी धर्म को किसप्रकार साध रहे हैं! तथा धर्मी को सरल भाव—आर्जवता होती है। सरलता से अपने गुण-दोष देखकर धर्म के प्रति उल्लसित होता है। ऐसे भावों द्वारा सम्यक्त्वी जीव पहिचाना जाता है।

देखो, यह भगवान का मार्ग! भगवान महावीर ने ऐसे उत्तम मार्ग का आज के दिन राजगृही में उपदेश दिया तथा गौतम गणधर ने उसको झेलकर शास्त्ररूप में गूँथा; उसी मार्ग के यह बात है, ऐसे मार्गरूप जिन-सम्यक्त्व की आराधना से जीव मोक्ष पाता है।

जिसको अज्ञान से भरे हुये मिथ्यामार्ग में उत्साह हो तथा कुमार्ग की प्रशंसा-सेवा-श्रद्धा हो, उस जीव को जिन-सम्यक्त्व होता ही नहीं। सम्यग्दृष्टि धर्मी जीव को परम वीतराग ऐसे जिनमार्ग का ही उत्साह होता है, उसकी ही प्रशंसा, सेवा तथा श्रद्धा करता है। ऐसा जीव जिनमार्ग की महिमा का बारंबार चिंतन करके, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र में अपना उत्साह बढ़ाता है अर्थात् रत्नत्रयधर्म की शुद्धि करता है; उसकी प्रशंसा और महिमा फैलाकर उत्तम प्रभावना करता है। अहो, यह तो वीरप्रभु का विपुलाचल पर उपदेशित अपूर्व वीतरागमार्ग है। अनादि से ऐसा अपूर्व मार्ग भगवान कहते आये हैं और अनंत जीवों ने इस मार्ग को साधकर मोक्ष प्राप्त किया है। मुझे भी इसी मार्ग को साधना है—ऐसी सम्यक्श्रद्धा द्वारा महान उल्लासपूर्वक धर्मी जीव मोक्षमार्ग को साधता है।

अरे, कुन्दकुन्दस्वामी कहते हैं कि जैन के नाम से प्रचलित श्वेतांबरादि मत भी प्रशंसनीय नहीं हैं; परम निर्ग्रंथरूप वीतराग जिनमार्ग की श्रद्धा करना, वही प्रशंसनीय है। भाई, प्रथम सत्य मार्ग का तो निर्णय कर, मार्ग के निर्णय बिना मोक्ष को कैसे साधेगा? मुनि होकर वस्त्र पहिने, ऐसा भगवान का मार्ग नहीं है। अरे, जगत में अनेक प्रकार के मिथ्यामार्ग चलते हैं, उनका सेवन करनेवाले मिथ्यादृष्टि जीवों का संग भी करनेयोग्य नहीं है।

भगवान के द्वारा कहा हुआ मार्ग वीतराग, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप है। अहो! वीतरागमार्गी मुनिवरों की दशा अंतरंग में तथा बाह्य में अलौकिक होती है। अंतरंग में तीन कषाय के अभाव से प्रचुर आनंद का वेदन तथा बाह्य में नग्न दिगम्बर देह-जिस पर वस्त्र का धागा भी नहीं होवे; एक ही बार निर्दोष भोजन लेना, अंदर ज्ञान-ध्यान भावना में बहुत ही एकाग्रता होना—ऐसी मुनिदशा जिनमार्ग में होती है। हे जीवो, सत्य ज्ञानपूर्वक जिनमार्ग की श्रद्धा करके उसका उद्यम करो। यही महाप्रशंसनीय मार्ग है। ऐसे मार्ग की श्रद्धा-सेवा-प्रशंसा-उत्साहरूप भाव, वह सम्यग्दृष्टि का लक्षण है।

विपुलाचल पर महावीर भगवान ने (२५२६ वर्ष पूर्व) श्रावण कृष्णा एकम को दिव्यध्वनि द्वारा वीतरागमार्ग को प्रसिद्ध किया था। वही परम सत्यमार्ग कुन्दकुन्दाचार्य आदि दिगम्बर संतों द्वारा आज तक चला आ रहा है। अंतर्मुखी ज्ञान द्वारा ऐसे वीतरागमार्ग को पहिचानकर परम महिमा और उल्लास से उसकी आराधना करनेयोग्य है।

जय महावीर... जय दिव्यध्वनि... जय विपुलाचल!

चैतन्य-रस का व्यापार

अनंतनाथ भगवान... अर्थात् अनंत गुणरत्नों से भरा हुआ चैतन्य-रत्नाकर

फाल्गुन कृष्णा द्वितीया को पालेज शहर में पधारने पर स्वागत के बाद जिनमंदिर में अनंत जिनेन्द्रदेव के दर्शन-वंदन करके, मंगल प्रवचन में अनंत गुणों के रत्नाकर की महिमा का वर्णन करते हुए स्वामीजी ने कहा था कि—स्वयंभूरमण समुद्र (जो कि असंख्य योजन के विस्तारवाला है) उसमें रत्न भरे हैं, उसकी रेती (बालू) रत्नों की धूल की बनी हुई है; समुद्र में रत्न भरे हुए होने के कारण उसको रत्नाकर कहा जाता है; इसीप्रकार यह आत्मा अनंत गुणरत्नों से भरा हुआ चैतन्य-रत्नाकर है; ज्ञान-श्रद्धा-आनंद इत्यादि अनंत रत्न इसमें भरे हुए हैं। यहाँ जिनमंदिर में अनंतनाथ भगवान विराजमान हैं, इसीप्रकार प्रत्येक आत्मा में अनंतगुणों से परिपूर्ण अनंतनाथ परमात्मा विराजमान हैं; किंतु पर के मूल्य के सामने अपना मूल्य स्वयं भूल गया। स्वयं अपना मूल्य करे तो उसका आनंद प्राप्त होता है, अंतर में गोता लगाने से सम्यग्दर्शन से लगाकर केवलज्ञानरूपी निर्मल रत्न प्राप्त होते हैं, पर की ओर का झुकाव छोड़कर अंतर के चैतन्य-समुद्र में प्रवेश करने से आनंदरस का प्याला हाथ में आता है, यही मंगल है।

❀ सुख से भरा हुआ चैतन्य समुद्र...
उसकी अंतर में खोज करो ❀

दोपहर के प्रवचन में समयसार कलश ३२ पर प्रवचन करते हुए स्वामीजी ने कहा-अहो, यह आत्मा चैतन्य का महासमुद्र अनंत गुणों से भरा हुआ; ज्ञानी इसका अनुभव करके कहते हैं कि अहो! यह भगवान ज्ञानसमुद्र प्रगट हुआ है, इसमें जगत के जीव मग्न हो जाओ। बाह्य के तो कोई भी पदार्थ दुकान-मकान-शरीर इत्यादि आत्मा के नहीं हैं किंतु अंदर जो राग-द्वेष के भाव होते हैं, यह भी आत्मा का वास्तविक स्वरूप नहीं है, इनका नाश करके आत्मा मुक्ति को प्राप्त होता है। भाई, तुझको जड़-शरीर तथा पुण्य के आडंबर मूल्यवान लगते हैं, उनकी महिमा तथा रस तुझको आता है, किंतु अनंत सुख से भरपूर, पुण्य-पाप-आस्रव तथा

शरीर से रहित ऐसा जो तेरा आत्मा, उसका मूल्य, उसकी महिमा, उसका रस अंतर में जागृत कर तो धर्म होगा और मुक्ति प्राप्त होगी। बाहर की महिमा का वर्णन कर करके तूने संसार में भ्रमण किया किंतु जो अनंत ज्ञानसमुद्र अपने में है, उसके समक्ष देखा भी नहीं। यहाँ तुझे समझाते हैं कि भाई! आत्मा तो ज्ञान का सिंधु है, ज्ञान तथा आनंद का समुद्र आत्मा है, किंतु कहीं राग या पुण्य का समुद्र नहीं है; जड़ का तथा राग का तो चैतन्य-समुद्र में अभाव है, किंतु ज्ञान तथा आनंद से यह भरा हुआ है। आत्मा के ज्ञान तथा आनंद हैं तो अपने में, किंतु खोजता है बाह्य में; जो वस्तु जहाँ हो, वहाँ ढूँढ़े तो वह प्राप्त हो-किंतु वस्तु हो घर में और ढूँढ़े बाहर-तो प्राप्त होगी कहाँ से? इसीप्रकार चैतन्य-वस्तु को चैतन्य में खोजे तो प्राप्त हो, किंतु चैतन्य-वस्तु को राग में या जड़ के ढ़ेर में, शरीर की क्रिया में खोजे तो कहाँ से प्राप्त होगी—अर्थात् कभी नहीं मिलेगी। जिसप्रकार माता बालक को उसके गाने सुनाती है; इसीप्रकार यह जिनवाणी माता जीव को उसके गाने सुनाती है कि भगवान! तू अनंतगुण का भंडार है, तू शुद्ध है, तू बुद्ध है, ज्ञान का समुद्र तू स्वयं है। ऐसे आत्मा को लक्षगत करने से चैतन्य-समुद्र स्वयं अंदर से उल्लसित होकर पर्याय में ज्ञान की तथा सुख की हिलोरें आती हैं। ऐसे आत्मा की समझ का व्यापार करने जैसा है। समझ का व्यापार अर्थात् अंतर्मुख होकर आत्मा को समझने का बारंबार अभ्यास करना, यह लाभ का व्यापार है।

श्रीमद् राजचंद्र भी आत्मा की पहिचान करने का उपदेश देते हुए १६ वर्ष की आयु में कहते हैं कि:—

मैं कौन हूँ, कहाँ से हुआ, मेरा सच्चा स्वरूप क्या है? किसके साथ मेरा कैसा संबंध है? इसको रक्खूं या छोड़ूँ? इससे मुझे लाभ है या हानि?—इसप्रकार अपने स्वरूप विचार अंतर में शांत होकर विवेकपूर्वक करना चाहिये। ऐसे अंतरविचारपूर्वक आत्मा का स्वरूप समझने से सर्वसिद्धांतों का सार अनुभव में आ जाता है। ज्ञान का समुद्र तो आत्मा स्वयं है; किंतु पुण्य-पाप की तरंगों जैसी इच्छा को अपना स्वरूप मानकर भ्रमणा से उसमें अटक रहा है। इसलिये भ्रमरूप तरंगों की ओट में संपूर्ण चैतन्यस्वरूप उछलता हुआ दिखलाई नहीं देता।

अरे! उसे अपने आत्मा को देखने का उत्साह और उल्लास नहीं आता। यदि अंतर से उल्लास लाकर जिज्ञासा से समझना चाहे तो आठ वर्ष का बालक भी समझ सकता है—ऐसी

यह बात है। व्यापार-धंधा की ओट में आत्मा के हित की परवाह नहीं करता, किंतु भाई! यह तो सब क्षणभंगुर है; इसलिये आत्मा के लिये निवृत्ति लेकर उसको समझना चाहिये। रे जीव! तेरा प्रभु तेरे में है.....

''विश्व की श्रेष्ठ निधियों से भी सम्यक्त्व महान है''

''मनुष्य को निधि, स्त्री तथा वाहन इत्यादि की प्राप्ति तो जगत में सुलभ है, परंतु सम्यग्दर्शनरूपी रत्न तो साम्राज्य से भी दुर्लभ है।''

कौन कहता है उपरोक्त वचन ?—सती सीता कहती हैं।

कब कहती हैं ?—जब रामचंद्रजी की आज्ञानुसार उन्हें भीषण वन में छोड़ दिया गया। वन में से सती सीताजी कृतान्तवक सेनापति के द्वारा महाराज रामचंद्रजी को संदेश भेजती हैं कि ''आपने लोकनिंदा के भय से मुझे गर्भावस्था में भीषण वन में छोड़ दिया; परंतु इस तरह कहीं लोकनिंदा के भय से सम्यग्दर्शन तथा जिनेन्द्र के दर्शन का त्याग मत कर देना, क्योंकि—

नरस्य सुलभ लोके निधि-स्त्री-वाहनादिकम्।
सम्यक्दर्शनरत्न तु साम्राज्यादपि दुर्लभम्॥४२॥

(पद्मपुराण, पर्व-९९)

सन् १९७१ की जनगणना के समय 'धर्म' के खाना नं० १० में गौत्र, जाति आदि ना लिखाकर केवल 'जैन' ही लिखाकर सही संख्या इकट्ठी करने में सरकार की मदद करें।

उपयोगस्वरूप जीव निजभाव का कर्ता है

(पाँच भावों द्वारा जीव के स्वरूप का वर्णन)

चेतनागुण से सदाकाल जीवित रहनेवाला जीव उपयोगस्वरूप है। पर्याय में उपयोग के विशेष भेद मतिज्ञान आदि होते हैं, किंतु स्वभावशक्ति से प्रत्येक आत्मा सर्वज्ञस्वभाव से परिपूर्ण है। ऐसे उपयोगस्वरूप आत्मा को कर्तापना किसप्रकार से है ? वह यहाँ समझाया गया है।

उपयोगस्वरूप आत्मा को वास्तव में परभावों का कर्तापना नहीं है किन्तु अपने निजभावों का कर्तापना है। आत्मा के निजभाव अर्थात् उपशमादिक भावों का कर्ता है किंतु अपने अस्तित्व से भिन्न शरीरादिक का यह कर्ता नहीं है। जीव ने अज्ञान से क्या किया ? कि अज्ञान तथा शुभ-अशुभ उदयभावों को किया; देह को अपना मानकर मिथ्यात्वभाव का कर्ता बना किंतु देह का कर्ता नहीं बना। अपने अस्तित्व में जो नहीं होता, उसका आत्मा नहीं कर सकता। पर के अस्तित्व में यह आत्मा नहीं है, तब यह उसका क्या कर सकता है ? ज्ञानभाव से अपने निर्मल उपशमिक-क्षायिक आदि भाव को जीव करता है।

जीव का परिणामिक भाव अनादि-अनंत है।
जीव का क्षायिक भाव सादि-अनंत है।
जीव के उपशमादिक भाव सादि-सांत है।

सर्वज्ञदेव के द्वारा देखे गये पाँच अस्तिकाय द्रव्य हैं, इनका अस्तित्व भिन्न-भिन्न है। आत्मा अपने अस्तित्व में अपनी पर्याय को करता है, अपनी पर्याय वह अपने ही भाव हैं, इनका आत्मा कर्ता है, किंतु अन्य पदार्थ के भावों का कर्ता आत्मा नहीं है। शरीर की कोई भी क्रिया आत्मा की नहीं है, क्योंकि शरीर की किसी भी क्रिया का अस्तित्व जीव में नहीं है किंतु पुद्गलास्तिकाय में उसका अस्तित्व है।

आत्मा की सत्ता अपने उत्पाद-व्यय-ध्रुव में समाविष्ट है; इसलिये उसका कर्तापना भी स्वयं के ही अस्तित्व में है, परभाव में उसका कर्तृत्व नहीं। तथा अपने भावों में ही स्वयं तदाकाररूप परिणमन करता है। यहाँ रागादिक परिणाम, यह भी आत्मा के ही भाव हैं क्योंकि यह आत्मा के अस्तित्व में होते हैं; यद्यपि शुद्ध निश्चयनय से आत्मा को रागादिभाव का कर्तृत्व

नहीं है, किंतु इसकी पर्याय में यह होते हैं, इसलिये उसका कर्तापन हेयबुद्धिसहित व्यवहार से है। ज्ञान का स्वामी रागादि पर का स्वामी कैसे बने ?

आत्मा सहज चैतन्यस्वभावी पारिणामिकभावरूप है। यह सम्यग्दर्शन का ध्येय है; यह अनादि-अनंत एकरूप सहज भाव है। ऐसे भूतार्थस्वभाव को ही भली रीति से ग्रहण करने से सम्यग्दर्शन होता है। व्यवहार होता है, फिर भी अभूतार्थ है, क्योंकि इसके लक्ष से सम्यग्दर्शन नहीं होता, इसलिये पर्याय को गौण करके अभूतार्थ कहा है। आत्मवस्तु सहज स्वभाव से अनादि-अनंत आनंद से परिपूर्ण है, पर्याय में आनंद के अंश के वेदन से ऐसा प्रतीति में आया कि अहो, संपूर्ण आत्मा ऐसा पूर्ण ज्ञान-आनंदस्वरूप है, पूर्ण ज्ञान-आनंद मेरे में भरा है—ऐसी प्रतीति से सम्यग्दर्शन होता है।

सहज पारिणामिकभावरूप चैतन्यस्वभाव से देखने पर आत्मा अनादि-अनंत है। औदायिकभाव सादि-सांत हैं, प्रत्येक समय इनका परिवर्तन होता रहता है, एकरूप रहते नहीं, इसलिये औदयिकभाव की अपेक्षा से आत्मा सादि-सांत है, उपशमभाव भी सादि-सांत है। उदयभाव तथा क्षयोशमभाव प्रवाहरूप से अनादि से हैं, किंतु अनादि से एकरूप टिकते नहीं, वह परिवर्तित भाव हैं, इसलिये यह सादि-सांत है। उपशमभाव तो अपूर्व अर्थात् नया ही प्रगट होता है तथा इसका अंत आ जाता है, इसलिये यह भी सादि-सांत है।

क्षायिकभाव प्रगट होने के बाद सदाकाल ऐसा का ऐसा ही टिका हुआ रहता है, इसलिये वह सादि-अनंत है; ऐसे भावों का कर्ता जीव है; जीव के ही अस्तित्व में वे होते हैं, इसलिये इनका कर्ता जीव को कहा गया। शुद्ध स्वभाव की दृष्टि में धर्मी को रागादिक का कर्तृत्व नहीं है, इसप्रकार राग से भिन्न शुद्धस्वभाव को दृष्टि में लेने से सम्यग्दर्शन प्रगट होता है।

यहाँ तो जीव का अस्तित्व कैसा है तथा इसमें कैसे भाव हैं, उसकी पहिचान करवाना है। फिर इनमें से किसके आश्रय से धर्म होता है तथा किसके आश्रय से धर्म नहीं होता, इसको भी समझना चाहिये। रागादि उदयभाव को जीव का भाव कहा, इससे कहीं वह राग मोक्ष का कारण नहीं है, वह तो बंध के कारणरूप भाव है। बंध के कारणरूप जो भाव है, उसको मोक्ष का कारण माने तो विपरीत मान्यता है।

क्षायिक सम्यक्त्वादि क्षायिकभाव, यह यद्यपि सादि हैं, किन्तु प्रगट होने के बाद इनका

कभी अंत नहीं, इसलिये यह अनंत हैं, अनंत काल तक वैसी की वैसी पर्याय हुआ करती है। श्रेणिक राजा को महावीर भगवान की सभा में क्षायिक सम्यक्त्व हुआ, वही क्षायिक सम्यक्त्व वर्तमान में नरक में भी उनको है, तथा तीर्थंकर होकर सिद्ध होंगे, तब भी वही क्षायिक सम्यक्त्व उनको चालू रहेगा। वर्तमान में उस जीव के अस्तित्व में चार भाव हैं—परिणामिकभाव (अनादि-अनंत); ज्ञानादिक का क्षयोपशम तथा नरकगति आदि उदयभाव हैं, उनका अल्पकाल में अभाव हो जायेगा; तथा सम्यक्त्व में क्षायिकभाव है। संसार में सभी जीवों को पारिणामिकभाव तथा उदयभाव होता है; इसके अतिरिक्त छद्मस्थ सभी जीवों को क्षायोपशमिक भाव होता है, तथा किसी के उपशम अथवा क्षायिकभाव भी होता है। सिद्धों को पारिणामिक तथा क्षायिक यह दो भाव ही होते हैं। जीव के सद्भाव में ऐसे भाव होते हैं; जीव के भावों का कर्ता जीव है, दूसरा उनका कर्ता नहीं, इसीप्रकार जीव दूसरे के भावों का भी कर्ता नहीं। जीव के ऐसे स्वतंत्र अस्तित्व को तथा उसके भावों को पहिचाने बिना जीवतत्त्व का सच्चा ज्ञान नहीं हो सकता।

कर्म के क्षय-उदय इत्यादि की अवस्था कर्म में तथा जीव के क्षायिकादि भावों की अवस्था जीव में—दोनों का सद्भाव भिन्न-भिन्न अपने-अपने में ही है, अन्य में उनका अभाव है।

एक जीव वस्तु को ही अनादि-अनंत भाव, तथा इसी को सादि-सांत तथा सादि-अनंत भाव—इसप्रकार दोनों बात संसारी जीव को एक ही साथ कहने में आती हैं, क्योंकि वस्तु द्रव्य-पर्यायस्वरूप है। अनादि-अनंत ऐसा पारिणामिकभाव तो द्रव्य-अपेक्षा से है, तथा सादि-सांत या सादि-अनंत (औपशमिक या क्षायिकादि) चार भाव यह पर्याय-अपेक्षा से हैं; उस-उस समय के भाव में जीव स्वयं उसरूप परिणमन करता है, इसप्रकार पाँच भावरूप जीव स्वयं परिणमन करता है, इसलिये उसको अपने भाव का कर्तापना है। पारिणामिकभाव जो सदा एकरूप है, वह स्वयं मोक्ष, मोक्षमार्ग या बंधरूप नहीं; बंध, मोक्ष या मोक्षमार्ग-यह उसरूप चार भाव पर्याय में हैं। एक भाव द्रव्यरूप, चार भाव पर्यायरूप—ऐसे पाँच भावरूप जीव है, वह अपनी पर्याय में अपने भाव का कर्ता है। वह अपने स्वभाव के आश्रय से वीतरागभावरूप परिणमन करे—इसका नाम जैनशासन है, यह धर्म है।

आत्मा शरीरादि अजीव पदार्थों से भिन्न है किंतु अपने ज्ञान-सुख इत्यादि गुणों से तथा पर्यायों से अभिन्न है। निरपेक्ष ऐसे पारिणामिकभाव से जीव को अनादि-अनंतपना है। उसी को अन्य भावों की अपेक्षा से सादि-सांतपना या सादि-अनंतपना सम्भवित है। जैसे कि जीव को

औदयिकभावरूप मनुष्यपना या देवपना, यह सादि-सांत है; तथा सिद्धदशारूप क्षायिकभाव सादि-अनंत है, किंतु ऐसे सादि-सांत, सादि-अनंत या अनादि-अनंत यह भाव जीव के स्वयं अपने से ही हैं, कोई अन्य के कारण से नहीं।—इसप्रकार स्वाधीन अस्तित्व से जीव को पहिचानना चाहिये। जिसप्रकार समुद्र समुद्ररूप से नित्य रहकर उसके पानी में तरंगें उठती हैं-विलीन होती हैं, इसीप्रकार जीव स्वयं द्रव्यरूप नित्य होते हुए भी उसमें पर्यायरूप तरंगें उत्पाद-व्यय को प्राप्त होती हैं; ऐसा जीव का अस्तित्व है।

जीव के छह कारक जीव में, पुद्गल के छह कारक पुद्गल में-दोनों का अत्यंत भिन्नपना है;—यह बात ६२वीं गाथा में कही गयी है। अनादि-अनंत ऐसे जीव को पर्याय में किसी भाव की अपेक्षा से सादि-सांतपना होने में विरोध नहीं, तथा किसी भाव की अपेक्षा से सादि-अनंतपना भी संभव है। किंतु परपदार्थ का अस्तित्व तो आत्मा में एक समय भी संभव नहीं है, उसका तो सदाकाल भिन्नपना ही है।

भाई, तू अपने अस्तित्व में देख... तेरे अस्तित्व में कौन से भाव तुझे हितरूप हैं तथा कौन से भाव हितरूप नहीं, उनको देख। पर के अस्तित्व में तेरा कुछ भी नहीं है तथा तेरे अस्तित्व में परवस्तु नहीं।

वस्तु का भाव वस्तु में होता है, बाह्य में नहीं होता। सुवर्ण का भाव कहीं रुपये में नहीं, सुवर्ण में ही है। सुवर्ण का जो पीलापन-चिकनापन-वजन है, यह उसका भाव है, इसीप्रकार आत्मा का भाव आत्मा में है; ज्ञान-सम्यग्दर्शन-सुख इत्यादि आत्मा के भाव हैं; वस्तु के भाव वस्तु से भिन्न नहीं होते। आत्मा का कोई भी भाव शरीर में नहीं रहता; आत्मा में ही होता है। उदयभाव के २१ प्रकार, क्षायिकभाव के ९ प्रकार, यह सभी भाव जीव के अपने से ही हैं, कोई अन्य के द्वारा नहीं। निमित्त अपेक्षा से चार भावों को कर्मकृत व्यवहार से कहा गया, किंतु निश्चय से जीव के भाव में कर्म का कारकपना नहीं है। जीव के कारक जीव में, कर्म के कारक कर्म में—इसप्रकार दोनों का सर्वत्र भिन्नपना ही है। जीव की अवस्था औदयिक, क्षायिक इत्यादि भाव होते हैं; उसमें कर्मों का उदय-क्षय इत्यादि निमित्त होते हुए भी, अपने उन भावों का कर्ता जीव स्वयं ही है, अन्य उनका कर्ता नहीं है, क्योंकि वे भाव जीव के ही अस्तित्व में है—ऐसा समझना।●●

स्वभाव की अपार महिमा

समयसार गाथा ३२० (जयसेनस्वामी की टीका) पर पिछले दिनों सोनगढ़ में चौथी बार प्रवचन हुए; स्वभाव के किसी अपूर्व उल्लासपूर्वक उसकी महिमा की स्वामीजी ने समझाया, जिसका मधुर प्रसाद यहाँ दिया जा रहा है। इसे ग्रहण करके पाठक आनंदित होंगे।

✣ स्वयंभूरमण जिसप्रकार स्वयं अपने में हिलोरें लेता है, उसीप्रकार आनंद का नाथ ऐसा अमृत का सागर आत्मा स्वयं अपने में हिलोरें ले रहा है। वाह! अंतर से आनंद का समुद्र उछला है। प्रभु, तू कैसा महान् चैतन्यसमुद्र है।—किंतु तू कहाँ रुक गया? महान ध्रुवतत्त्व को भूलकर एक क्षणिक अंश में तू पूर्णता मानकर रुक गया। संत तुझे तेरी संपूर्ण वस्तु समझाते हैं।

✣ अज्ञानी की श्रद्धा, वह जो अवस्तु की श्रद्धा है अर्थात् मिथ्याश्रद्धा है।

✣ क्षायिक ज्ञान में जिसप्रकार रागादि का कर्तापन-भोक्तापन नहीं, इसीप्रकार साधक धर्मी की दृष्टि में रागादि का कर्ता-भोक्तापन नहीं। त्रिकाल शुद्ध वस्तु पूर्ण है, यही शुद्धदृष्टि का विषय है। मिथ्यादृष्टि का कोई विषय ही वास्तव में नहीं है—वह तो क्षणिक रागादि पर्याय जितना ही, या कर्म के संबंध जितना ही आत्मा मानता है, किंतु ऐसी आत्मवस्तु तो नहीं है, इसलिये 'अवस्तु की' वह श्रद्धा करता है, इसलिये वह श्रद्धा मिथ्या है। (अज्ञानी के मिथ्याज्ञान अनुसार जगत में कोई पदार्थ नहीं, इसलिये उसका ज्ञान मिथ्या है, इसका वर्णन बंध अधिकार में किया गया है।)

सम्यग्दृष्टि की श्रद्धा का विषय 'सत्' है, शुद्ध वस्तु जैसी है, वैसी वह श्रद्धा में लेता है।

✣ शुद्धज्ञान राग को करता है? शुद्धज्ञान कर्म को करता है?—नहीं; वह राग को या कर्म को करता या भोगता ही नहीं, मात्र जानता है, जाननेरूप ही परिणमन करता है।

✣ द्रव्यस्वभाव अनंत सामर्थ्य से भरपूर है। उसमें जिसकी दृष्टि है, वैसी शुद्धदृष्टिरूप-शुद्धज्ञानरूप परिणमन करनेवाला जीव, उसकी यह बात है।

✣ सम्यग्दर्शन-पर्याय द्रव्य के साथ अभेद हो गई है। प्रथम परसन्मुख एकता थी, वह स्वसन्मुख एकता हुई; पर्याय रागादि के साथ अभेद थी, इसके बदले अंतर में झुककर स्वभाव के साथ अभेद हो गई। यह धर्मात्मा के अंतर मस्ती की बात है। आत्मा ध्रुवस्वभाव में अभेद होकर परिणमित हुआ है, उस समय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-आनंदरूप परिणति प्रगट हुई।

✣ परिणमन, यह पर्याय है, ध्रुव को परिणमन नहीं है। धर्मी की पर्याय में ऐसा परिवर्तन हो गया हे कि ध्रुवस्वभाव में अभेददृष्टि से उसको रागादि का कर्ता-भोक्तापना छूट गया है। अकेली पर्याय को ही वह नहीं देखता। पहले रागादि के साथ अभेदरूप परिणमन करता था, वह मिथ्यात्व था, वह छूट गया और स्वभाव के साथ अभेदपरिणति से सम्यक्त्वादिरूप परिणमित हो गया।

✣ 'शुद्धज्ञान' त्रिकाली स्वभाव को भी कहा जाता है। इसप्रकार उसके आश्रय से परिणमन करनेवाले उपशमादि भावों को भी शुद्धज्ञान परिणति अथवा शुद्धोपयोग इत्यादि कहा जाता है। शुद्धोपयोगपूर्वक उपशमादिक भाव प्रगट होते हैं। उपशमभावरूप धर्म का प्रारंभ शुद्धोपयोग द्वारा ही होता है।

✣ आत्मा परम आनंद की मूर्ति अनंत सुख का सागर है; उसमें दृष्टि करने से जो अंदर था, उसका परिणमन पर्याय में हुआ। शुद्धोपयोगरूप परिणमन करनेवाला जीव रागादि का कर्ता-भोक्ता नहीं होता। शुद्धपरिणति दोष को कैसे उत्पन्न कर सकती है ? तथा उसको भोग भी कैसे सकती है ?

✣ यह बात अवश्य समझने योग्य है। समझने के लिये वाणी की ओर नहीं, पर्याय की ओर नहीं; किंतु अंदर सत् स्वभाव है, उसमें लक्ष्य करे तो यह समझ में आ जावे ऐसा है। सिद्ध के समान अपने सत् स्वभाव से आत्मा एक क्षण भी भिन्न नहीं है; ऐसे अपने आत्मा को लक्ष्य में लेकर अनुभव करने की यह बात है।

✣ शुद्ध आत्मा उपयोगस्वरूप है, उस परम स्वभाव में जिसकी दृष्टि है, ऐसा धर्मी जीव रागादि की क्रिया का कर्ता भी नहीं तथा भोक्ता भी नहीं। सर्वज्ञपद आत्मा में भरा है, उसमें एकाग्रता के द्वारा वह पर्याय में प्रगट होता है। आत्मा की शक्ति में केवलज्ञान नहीं हो तो पर्याय में आयेगा कहाँ से ? परम ज्ञानस्वभावी आत्मा है।

✣ ऐसे ज्ञायकस्वभाव की दृष्टि किसप्रकार करना ?

अंतर में ऐसा स्वभाव है, उसकी जाति रागादि से बिल्कुल भिन्न है—ऐसा निर्णय करके भेदज्ञान का अभ्यास करे, तब ऐसी दृष्टि प्रगट हो। यह तो अंतर के स्वरूप की बात है। ऐसी दृष्टि प्रगट करके जिस जीव ने आनंदपरिणतिरूप परिणमन किया, उसके शुद्धपरिणमन में दुःख नहीं, राग नहीं, तथा उसका वह कर्ता-भोक्ता भी नहीं। शुद्ध ज्ञानपरिणति में राग के अकर्तापने की अपेक्षा से क्षायिकज्ञानी तथा श्रुतज्ञानी दोनों समान हैं।

✣ संवत् १९७८ में सम्यग्ज्ञान दीपिका लेकर स्वामीजी वन में जाकर एकांत में उसका वांचन मनन करते थे। उसमें कहा है कि इस आत्मा में तथा सिद्ध परमात्मा में किसी प्रकार का अंतर नहीं। स्वभाव से इस आत्मा में तथा सिद्ध परमात्मा में किंचित् भी अंतर माने तो वह मिथ्यादृष्टि है। जिसप्रकार स्वभाव से दोनों समान हैं, इसीप्रकार उस स्वभाव की दृष्टि में जो रागादि का अकर्तापना हुआ, उसमें भी दोनों समान हैं। जिसप्रकार क्षायिक ज्ञानी केवली भगवान के ज्ञान में रागादि का कर्ता-भोक्तापन नहीं है, इसीप्रकार स्वभावदृष्टिवंत साधक धर्मात्म की शुद्धज्ञानपरिणति में भी रागादि का कर्तापन नहीं। स्वभावदृष्टि होने से धारावाही शुद्धज्ञानपरिणति हुआ करती है, वहाँ 'इस परिणति को मैं करता हूँ' ऐसे विकल्प का भी उस परिणति में अभाव है। अहो! पूर्णानंदी ध्रुवस्वभाव की दृष्टि में ऐसी परिणतिरूप आत्मा परिणमित हुआ—इसका नाम धर्म है।

✣ अहो, वीतरागी संतों की यह परम कृपा है कि पामर को भी प्रभु कहकर संबोधित करते हैं। आत्मा पर्याय में पामर है, फिर भी स्वभाव से प्रभु है—उस प्रभुता को संत बतलाते हैं। जिसप्रकार माता प्यार से लोरियाँ गाकर बालक की प्रशंसा करती है, उसीप्रकार संत आत्मगुणों के गाने सुनाकर जगाते हैं कि हे जीव! तू जागृत हो। राग के जितना हो तू नहीं है, तेरा ज्ञान राग का कर्ता नहीं। तू तो पूर्णानंद का नाथ है, स्वभाव में एकाग्र होकर परमात्मा होने की तेरी शक्ति है।

✣ पर्यायबुद्धि में सोनेवाले जीव को द्रव्यस्वभाव दिखलाई नहीं देता। अखंड द्रव्यस्वभाव में जहाँ दृष्टि एकाग्र हुई, वहाँ जीव की मोहनिद्रा का नाश होकर वह जागृत हो गया कि अहो! जैसे परमात्मा वैसा मैं हूँ। परमात्मा में तथा मेरे में किंचित् भी अंतर नहीं। पर्याय भले ही लघु, किंतु स्वभाव तो महान है। ऐसे त्रैकालिक महान स्वभाव को प्रतीति में लेने से रागादि

कर्तापने की तुच्छता थी, वह नष्ट होकर शुद्धज्ञानभावरूप महान परमात्मपना प्रगट होता है। जिसप्रकार अणुबम देखने में छोटा होता है किंतु उसकी शक्ति इतनी विशाल होती है कि सैकड़ों मील तक सफाया कर देता है! इसीप्रकार आत्मा क्षेत्र से भले ही छोटा दिखाई दे किंतु अंदर परमात्मशक्ति का महान भंडार भरा है, उसकी दृष्टि तथा उसका अनुभव वह कर सकता है। छोटे शरीर में रहनेवाला मेंढ़क का आत्मा भी अपने ध्रुव चिदानंदस्वभाव को लक्ष्य में लेकर उसके आनंद का वेदन करता है। इस वेदन में रागादि के वेदन का अभाव है। अज्ञानदशा में पर्याय को परभाव में एकाग्र करके दु:ख का वेदन करता था, अब पर्याय को स्वभाव में एकाग्र करके आनंद का वेदन करता है।

✣ पुण्य-पाप, राग-द्वेष यह तो क्षणिक दोष है। संपूर्ण आत्मा कहीं वैसा नहीं है। आत्मा का स्वभाव रागादि परभाव से रहित ज्ञानानंद से परिपूर्ण है। स्वभाव को देखनेवाला धर्मी जीव पुण्य को भी अशुचिरूप, आस्रवतत्त्व तथा हेय समझकर उसकी इच्छा नहीं करता, वह तो ज्ञानरूप ही परिणमन करता है, ज्ञानपरिणति में राग कैसा? ज्ञानपरिणति कहाँ से आती है? जहाँ ज्ञान होता है, वहाँ एकाग्रता से ज्ञानपरिणति आती है, किंतु कहीं राग में से ज्ञानपरिणति नहीं आती। स्वभावदृष्टि में एकाग्र हुआ, वहाँ निर्मल ज्ञानपरिणतिरूप परिणमन हुआ ही करता है—ऐसा आत्मा का स्वभाव है। ऐसे आत्मा की दृष्टिवान धर्मी जीव कर्म की निर्जरा इत्यादि अवस्थाओं को जानता है, किंतु करता नहीं है; उनका अकर्तारूप सहज ज्ञानभावरूप ही रहता है। ऐसी शुद्धज्ञानपरिणति का नाम धर्म है।

✣ ध्रुवस्वभाव के आश्रय से पर्याय में जो पुरुषार्थ हुआ, शुद्धता की वृद्धि हुई, वह तप है, वह भावनिर्जरा है। परंतु उस निर्जरा पर्याय को मैं करता हूँ—ऐसी पर्यायसन्मुख दृष्टि से निर्जरा नहीं होती; पर्याय अंतर में एकाग्र हुई, वहाँ स्वभाव के आश्रय से शुद्धपरिणति वर्तती ही है। उस शुद्ध परिणति में रागादि भावों का कर्ता-भोक्तापन नहीं, और वही मोक्ष का उपाय है।

चैतन्यचक्षु आत्मा

परपदार्थों का ज्ञाता है, किंतु कर्ता-भोक्ता नहीं

चैत्र कृष्णा १० से चैत्र शुक्ला ९ तक पूज्य स्वामीजी राजकोट में रहे; उन दिनों श्री समयसार गाथा ३२० की जयसेनाचार्यकृत टीका तथा प्रवचनसार गाथा १७२ के ऊपर प्रवचन हुए थे; उन प्रवचनों का संक्षिप्त सार यहाँ दे रहे हैं। गाथा ३२० के संपूर्ण प्रवचन 'ज्ञानचखु' पुस्तक के रूप में गुजराती में प्रकाशित हो चुके हैं; हिन्दी में भी प्रकाशित करने की योजना है।

यह समयसार की ३२०वीं गाथा है। राजकोट तथा सोनगढ़ में भी इसके ऊपर प्रवचन पहले हो चुके हैं। अब तीसरी बार इसके ऊपर प्रवचन हो रहे हैं।

चैतन्यमूर्ति आत्मा के अस्तित्व में किसी भी परद्रव्य का अस्तित्व नहीं है, इसलिये शरीरादि किसी भी परद्रव्य का कर्ता आत्मा नहीं; अज्ञानी भी पर का कर्ता हो तो उसमें तन्मय हो जाये; और तन्मय हो तो जड़ बन जाये।—ऐसा कभी होता नहीं।

अज्ञानी आत्मा अपने चैतन्यस्वरूप को भूलकर राग-द्वेष-क्रोधादि परभावरूप परिणमन करता है, इसलिये अज्ञान से वह उनका कर्ता है; किंतु उन परभावों को आत्मा का सच्चा स्वरूप नहीं कहते। इसलिये रागादि में तन्मय हो, वह सच्चा आत्मा नहीं है।

अज्ञानी का द्रव्यस्वभाव कहीं रागादिरूप नहीं होता, इसलिये द्रव्यस्वभाव कहीं कर्म में निमित्त नहीं होता; उसकी पर्याय में जो क्षणिक मोह तथा योग के कम्पन का विकारी भाव है, वह क्षणिक भाव ही कर्म में निमित्त है। किंतु उन क्षणिक विकारी भावों को आत्मा नहीं कहा जाता, इसलिये जिनकी दृष्टि शुद्ध आत्मा के ऊपर है, ऐसे धर्मी जीव तो निमित्त से भी कर्म के कर्ता नहीं हैं।—यह बात समयसार की १००वीं गाथा में बतलाई गई है।

कर्म के बंधन में जो निमित्त हो, उसको वास्तव में आत्मा नहीं कहते; बल्कि कर्म, वह ज्ञानी के ज्ञान में ज्ञेयरूप से निमित्त है।

जगत के पदार्थ जड़ हों या चेतन—वे सब अपनी-अपनी पर्यायरूप परिणमन करने के स्वभाववाले हैं; अन्य कोई उनको परिणमाये तो परिणमन करें—ऐसे पराधीन कोई पदार्थ नहीं हैं। जो स्वयं परिणमन कर रहा है—उस पदार्थ को मैं परिणमन करवाता हूँ—ऐसा अज्ञानी मोह से ही मानता है। उसको यहाँ समझाते हैं कि भाई! आत्मा तो चैतन्यचक्षु है। जिसप्रकार आँख पदार्थों को देखती है किंतु उनमें परिवर्तन नहीं करती; उसीप्रकार जगत को देखनेवाला चैतन्यचक्षु, उसको पदार्थ का कर्तापना या भोक्तापना नहीं है; वह तो शुद्ध ज्ञानरूप ही परिणमन करता है। वह शुद्धज्ञान आनंदसहित है।

ज्ञान के स्वरूप से राग भिन्न वस्तु है। ज्ञान में तथा राग में दोनों में आत्मा एकसाथ तन्मय नहीं हो सकता। एकसाथ दोनों का कर्ता बनने जाये तो वह अपने स्वरूप को भूल जाता है, ज्ञान तथा राग की भिन्नता को वह भूल जाता है। राग का कर्ता होकर उसमें तन्मय होने जाये तो राग से भिन्न ऐसे ज्ञान को भूल जाता है, अर्थात् अज्ञानी हो जाता है। स्वसन्मुख होकर ज्ञान में तन्मय होकर परिणमन करे तो उसमें राग का कर्तापना रहता नहीं। अहो, परभावों से पीछे हटकर ज्ञान के समुद्र में आना, यह एक महान कार्य है। राग में रहना, यह मेरा कर्तव्य नहीं है। ज्ञानसमुद्र तो आनंद से भरा हुआ है, उसमें राग का या कर्म का कर्ता-भोक्तापना नहीं है। ऐसे आत्मा की दृष्टि से शुद्धज्ञानपरिणतिरूप परिणमन करनेवाला ज्ञानी-धर्मात्मा, वह राग का कर्ता-भोक्ता नहीं होता। ज्ञानी का आत्मा अथवा ज्ञानी की शुद्धोपयोग परिणति, उसमें कहीं भी परभाव नहीं है। ऐसी दशा का नाम मोक्षमार्ग है।

वस्तु में पर्याय का उत्पाद-विनाश होता है, फिर भी द्रव्यरूप जो ध्रुवता है, उस ध्रुवता का सदृशपना नाश नहीं होता। प्रत्येक वस्तु में पर्याय-अपेक्षा से विसदृशता होते हुए भी ध्रुव-अपेक्षा से सदृशता है। पर्याय की विसदृशतारूप आत्मा स्वयं परिणमन करता होने पर भी ध्रुव-अपेक्षा से उसका सदृशपना नाश नहीं होता।—ऐसा वस्तु का स्वभाव है। बीच में राग होता है, वह ज्ञान का कर्तव्य नहीं है; अगर वह ज्ञान का कर्तव्य हो तो राग में भी आनंद का वेदन आना चाहिये। राग में तो दुःख है, वह धर्मी आत्मा का कार्य किसप्रकार हो सकता है? सातवें नरक की तीव्र प्रतिकूलता के संयोग के बीच रहनेवाला सम्यग्दृष्टि जीव अपनी ज्ञानपरिणति में दुःख

का वेदन आने ही नहीं देता; किंचित् आकुलता का जो भाव है, वह ज्ञान के परज्ञेयरूप है; ज्ञान उसमें तन्मय नहीं है; इसलिये वह ज्ञान का कार्य नहीं।

भाई! ऐसी ज्ञानस्वरूप तेरी वस्तु है। ऐसी वस्तु का ज्ञान, वह आनंदसहित है। अकेले राग को जाननेवाला ज्ञान, उसमें आनंद नहीं है। राग तथा ज्ञान की भिन्नता पहिचानकर जो ज्ञान स्वसन्मुख हो गया है, वह परम-आनंद के वेदन सहित है। अहो, ज्ञातादृष्टा स्वभावरूप जो चक्षु है, उसमें राग का कण समा जाये, ऐसा नहीं है। ज्ञान स्वयं पुण्य-पापरूप या राग-द्वेषरूप नहीं होता। ऐसे ज्ञान सहित अपना अनुभव करते हुए मोक्ष की साधना की जाती है। यह बात समझने में परम कल्याण है।

सर्वज्ञपना तथा पूर्ण आनंद, यह आत्मा का स्वरूप है। ऐसे आत्मा का अनुभव राग से पार है। आत्मा अपने स्वसंवेदन से प्रत्यक्ष है, ऐसा अपना स्वरूप है, वह अपनी समझ में आ सके ऐसा है। सूक्ष्म तथा अपूर्व है किंतु स्वानुभव में आ सकता है। नित्य उपयोगरूप अपना स्वरूप समझने के लिये जगत के सामने देखना नहीं है। किंतु अपने अंतर के स्वसंवेदनरूप प्रत्यक्ष ज्ञान से आत्मा को पहिचाना जाता है। बीच में किसी संयोग का, वाणी का या विकल्प का आवरण डाले तो दिखलाई नहीं देगा।

अहो, प्रत्यक्ष ज्ञानस्वभावी वस्तु, उसको इन्द्रियों की या राग की अपेक्षा क्यों होगी? चैतन्यवस्तु का जब राग के साथ ही समन्वय नहीं है, तब अन्य कुमार्ग के साथ समन्वय कैसे होगा? वर्तमान में समन्वय के नाम पर अनेक व्यक्ति (उपदेशक-व्याख्याता) अज्ञान का ही पोषण करते हैं। यहाँ तो भगवान की कहीं हुई उच्च कोटि की बात अर्थात् स्वानुभव की बात है। आत्मा का प्रत्यक्ष-स्वानुभव हुए बिना सब व्यर्थ है।

अनंत आत्मा स्वतंत्र तथा अपनी अपनी पर्यायसहित हैं—ऐसे स्वीकार के साथ शुद्ध आत्मा की पहिचान होती है। किंतु स्वतंत्र आत्मा क्या?—उसकी पर्याय क्या? ऐसा माने बिना वेदांत के मतानुसार शुद्ध-शुद्ध कहता रहे, यह तो केवल कल्पना है। परभावों से भिन्न आत्मा का स्वसंवेदन करके उसकी उपासना करे, तब उसको 'शुद्ध' कहा जाता है। यह बात छट्ठी गाथा में आचार्यदेव ने अपूर्वता से समझाई है।

जिसप्रकार आकाश का क्षेत्र अपार है, कहीं भी उसका अंत नहीं; उसको एक समय में

जान लेनेवाले ज्ञान का सामर्थ्य भी अनंत-अपार है। ज्ञान की शक्ति की कोई मर्यादा नहीं है कि इतना तो जान लेता है और इससे आगे का नहीं जान सकता। इसप्रकार ज्ञानगुण की एक पर्याय का असीम सामर्थ्य है; ज्ञान के साथ अन्य गुणों का वैभव भी भरा हुआ है। अहो! आत्मा की महिमा की क्या बात! राग से जिसका पार नहीं पाया जा सकता, स्वानुभवप्रत्यक्ष से ही जिसका पार पाया जा सकता है—ऐसा अपार वैभव आत्मा में है। धर्मी गृहस्थ भी अपने ऐसे आत्मा का अनुभव करता है। जिसप्रकार द्रव्यस्वभाव में राग नहीं, उसीप्रकार उसके अनुभवरूप से परिणमन करनेवाले धर्मी जीव की परिणति में भी राग का कर्ताभोक्तापना नहीं। अव्रती सम्यग्दृष्टि इन्द्र अपने को ऐसे निजवैभव का स्वामी समझता है, स्वर्ग के विमान का स्वामी वह अपने को नहीं मानता; एक विकल्प का भी जहाँ स्वामित्व नहीं, वहाँ जड़-विभूति की बात ही कहाँ?

शुभराग करो या पर की दया पालन करो—ऐसी बात तो साधारण बात है। साधारण व्यक्ति भी इतना तो जानते हैं। क्या ऐसी शुभराग की कथा का ही श्रवण करने के लिये इन्द्र स्वर्ग से यहाँ आते होंगे?—नहीं; चिदानंदस्वभावी आत्मा के वीतरागी रस की अपूर्व धारा तीर्थंकर की वाणी में प्रवाहित होती है, उस वीतराग-रस का श्रवण करने के लिये इन्द्र स्वर्ग से उतरकर मध्यलोक में आते हैं। यह तो कोई अपूर्व वीतरागभाव की कथा है, इसका श्रवण भी दुर्लभ है। भक्त से भगवान बनने की यह कथा है।

अज्ञानी कहता है कि शुभराग चाहिये, निमित्त चाहिये; प्रथम राग, उसके बाद आत्मा; शुभराग करते-करते आत्मा प्राप्त हो जायेगा। ज्ञानी कहते हैं कि प्रथम राग नहीं किंतु प्रथम आत्मा; प्रथम राग से भिन्न होकर आत्मा का ज्ञान करे, तब बीच में आनेवाले राग का सच्चा ज्ञान होगा। प्रथम से ही जो राग में रुक जायेगा तो आत्मा को भूल जायेगा; निर्मल पर्यायरूप परिणमित होनेवाला आत्मा राग को करता नहीं; राग को भले ही जाने, उसमें तन्मय नहीं होता; ज्ञान को रागरूप नहीं करता।

अहो! भेदज्ञान की अपूर्व बात है। ज्ञान तथा राग की भिन्नता का जीव ने कभी अनुभव नहीं किया; अनुभव कैसे प्राप्त हो? उसकी यह बात है। अखंड आनंदधाम आत्मा में जो उपयोग एकाग्र हो गया, वह राग को किसप्रकार कर सकता है? आनंद के वेदन में राग का वेदन किसप्रकार हो सकता है?

द्रव्य-पर्यायरूप आत्मवस्तु, उसे देखनेवाले दो नय। द्रव्यनय का विषय, वह भी एक अंश है और पर्यायनय का विषय, वह भी एक अंश है। शुद्धनय स्वयं पर्याय है किंतु वह अखंड द्रव्य को विषय बनाता है, वहाँ नय तथा उसका विषय दोनों अभेद हो जाते हैं। ऐसे अभेद आत्मा की प्रतीति, वह सम्यग्दर्शन है। 'यह शुद्धनय और यह उसका विषय' ऐसे भेद अनुभूति में नहीं हैं। आनंद-रस का धाम आत्मा है, उसके सन्मुख होकर उसका वेदन करना, यह शास्त्र का तात्पर्य है।

भाई, दुनिया की बात समझने के लिये उसमें रस लेकर गहराई में जाता है, तो यह अपने आत्मा के वैभव की बात समझने के लिये उसमें रस लेकर गहराई में उतरे तो किसी अपूर्व वस्तु का आनंद तेरे अनुभव में आये।

❀ ❀ ❀

[श्री प्रवचनसार गाथा १२७ के प्रवचन से]

निजस्वरूप को जानने की जिसे रुचि है-लगन है, ऐसे जिज्ञासु शिष्य को आचार्यदेव इस गाथा द्वारा आत्मा का स्वरूप बतलाते हैं। आत्मा का लक्षण चेतना है; अपनी चेतना अपने स्वद्रव्य के ही आश्रय से है, इसलिये चेतना द्वारा अपना स्वद्रव्य अनुभव में आता है। ऐसा जो चैतन्यलक्षण से लक्षित आत्मा है, वह अलिंगग्राह्य है। उसको अलिंगग्रहण कहकर बीस अर्थों द्वारा अत्यंत स्पष्ट करके आत्मा का स्वरूप समझाया है।

प्रथम बोल में कहते हैं कि—आत्मा जाननेवाला है, वह इन्द्रियों से नहीं जाना जाता; जानना अर्थात् ग्रहण करना; इन्द्रियों के द्वारा जो ग्रहण नहीं किया जा सकता, वह अलिंगग्रहण है। अर्थात् आत्मा अतीन्द्रिय ज्ञानमय है। शरीर तथा इन्द्रियों से आत्मा अत्यंत भिन्न है। पर्याय में परोक्ष ज्ञान है, इन्द्रियों का संबंध है, किंतु उन इन्द्रियों को या उनके द्वारा होनेवाले खंड-खंड ज्ञान को सच्चा आत्मा नहीं कहते, क्योंकि इतना ही आत्मा मानने से आत्मा का सच्चा स्वरूप अनुभव में नहीं आ सकता। द्रव्येन्द्रियाँ, भावेन्द्रियाँ तथा उनके विषयरूप वाणी इत्यादि पदार्थ, इन तीनों को 'इन्द्रियों' में गिनकर, इससे भिन्न ज्ञानस्वभाव को गाथा ३१ में बतलाया है। ऐसे आत्मा का अनुभव जो करता है, उसने इन्द्रियों को जीता कहा जाता है; तथा यही सम्यग्दर्शन है। सर्वज्ञ भगवान का वह पहला भक्त है, और वही सर्वज्ञ की परमार्थ-सच्ची स्तुति है। इन्द्रियों

के द्वारा या उनकी ओर के ज्ञान द्वारा सर्वज्ञ की स्तुति नहीं की जा सकती। सर्वज्ञ भगवान की परमार्थ-स्तुति (आराधना) अतीन्द्रिय ज्ञान के द्वारा ही की जा सकती है। स्वभाव का अवलंबन लेनेवाला स्वभाव की जाति का ज्ञान, वही आत्मा का स्वरूप है। अर्थात् आत्मा अतीन्द्रिय ज्ञानस्वरूप है।

आत्मा का ज्ञानस्वरूप सत् है, इन्द्रियाँ असत् हैं; अकेला इन्द्रियों की ओर का ज्ञान भी असत् है, उसको आत्मा का स्वरूप नहीं कहते। वह ज्ञान आनंदमय नहीं है। जिसके साथ आनंद नहीं हो, उसको ज्ञान कौन कहेगा? अतीन्द्रिय ज्ञान के द्वारा जिसने अपने अतीन्द्रिय स्वभाव को पकड़ा, उसने सभी शास्त्रों को जान लिया। वीतराग-सर्वज्ञ के उपदेश का यह रहस्य है।

भगवान आत्मा के अतीन्द्रिय दरबार में प्रवेश करने का द्वार अलग है। इन्द्रियों के द्वार से आत्मा के महल में प्रवेश नहीं किया जा सकता; अतीन्द्रिय ज्ञान के द्वार से आत्मदरबार में प्रवेश किया जा सकता है।

इन्द्रियों की जाति भिन्न है और आत्मा की जाति भिन्न है। अतीन्द्रिय जातिवाला आत्मा इन्द्रियों के द्वारा क्यों जानेगा? अरे, अतीन्द्रिय आत्मा को इन्द्रियज्ञान का अभिमान कैसा? इन्द्रियों का आलंबन, यह तो अतीन्द्रिय आत्मा को कलंक है; वह आत्मा का स्वरूप नहीं है तथा उससे आत्मा की शोभा भी नहीं है। अतीन्द्रिय ज्ञान के द्वारा जानने का कार्य करे, वही सच्चा आत्मा है, वही आत्मा का सच्चा चिह्न है।

आत्मा अतीन्द्रिय ज्ञानस्वरूप है, उसे इन्द्रियज्ञान के द्वारा जाना नहीं जा सकता। आत्मा इतना स्थूल नहीं है कि इन्द्रियज्ञान से जाना जा सके। इन्द्रियाँ, वह आत्मा की जाति नहीं है; इसलिये इन्द्रियों के लक्ष्य से आत्मा जानने में नहीं आ सकता। इन्द्रियज्ञान के द्वारा जो कुछ भी जानने में आता है, वह आत्मा का सच्चा स्वरूप नहीं है। आत्मा ज्ञानस्वरूप है, वह ज्ञानस्वभाव की ओर उन्मुख हुई ज्ञानपर्याय के द्वारा ही जाना जा सकता है; वह ज्ञान आत्मा की जाति का है।

कोई ऐसा कहे कि आत्मा को जाना ही नहीं जा सकता।

तो कहते हैं कि—ऐसा नहीं है। आत्मा को जाना जा सकता है।—विकल्प के द्वारा या इन्द्रियाधीन ज्ञान के द्वारा आत्मा भले ही जानने में न आये, किंतु अतीन्द्रिय ज्ञान के द्वारा वह प्रत्यक्ष जाना जा सकता है। देखो, आत्मा का अनुभव करने के यह मंत्र हैं। अतीन्द्रिय ज्ञान के

द्वारा आत्मा को जाने बिना किसी भी उपाय से धर्म नहीं हो सकता।

अतीन्द्रिय ज्ञान कहो या निश्चयालम्बी ज्ञान कहो, इन्द्रियज्ञान कहो या व्यवहारालंबी ज्ञान कहो; निश्चयस्वभाव का अवलंबन लेनेवाला जो अतीन्द्रिय ज्ञान है, उसके द्वारा जानने में आये, ऐसा भगवान आत्मा है। आत्मा इतना तुच्छ नहीं है कि इन्द्रियज्ञान में आ जाये।

जिसप्रकार बड़े राजा को भिखारी कहना या उसे तुच्छ समझना, वह उसका अनादर तथा अपमान है, महान अपराध है। उसीप्रकार अतीन्द्रिय ज्ञानस्वभावी अनंत गुणसंपन्न भगवान आत्मा महान चैतन्य महाराजा है, उसको राग जितना या इन्द्रियज्ञान के विषय जितना मानना, यह तो महान अनादर है, महान अपराध है, अर्थात् मिथ्यात्व है। विकल्पातीत अतीन्द्रिय ज्ञान के द्वारा उसके सामने देखकर बुलाओ तभी उत्तर दे—ऐसा महान चैतन्य भगवान है। आत्मसन्मुख हुआ ज्ञान, वही सच्चा ज्ञान है, वही आनंदमय है। इन्द्रियों की ओर उन्मुखता में तो दुःख है।

आत्मा जब इन्द्रियज्ञान के द्वारा भी नहीं जाना जा सकता, तब जड़ भाषा से या उस ओर के विकल्प से आत्मा किसप्रकार जानने में आ सकता है ? वह तो स्वसंवेदनरूप प्रत्यक्षज्ञान के द्वारा ही जाना जा सकता है।

इन्द्रियगम्य चिह्नों के द्वारा या अनुभव के द्वारा आत्मा का स्वरूप नहीं पहिचाना जा सकता। आत्मा को जानने के लिये अज्ञानी जितने इन्द्रियगम्य साधन मानता है, वे सभी असत्य हैं; उन साधनों के द्वारा जो जाना जाता है, वैसा आत्मा है ही नहीं। अतीन्द्रिय ज्ञानस्वरूप परिणमन करनेवाला आत्मा, उसकी पहिचान करने के लिये सामनेवाले जीव में भी उसी जाति का अतीन्द्रियज्ञान होना आवश्यक है। धर्म का माप इन्द्रियों से पार है।

स्वोन्मुख होकर अपने आत्मा को अतीन्द्रियप्रत्यक्ष किये बिना केवली भगवान की, या सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा की सच्ची पहिचान नहीं हो सकती। अहो, वीतरागमार्ग संपूर्ण स्वसन्मुखता का मार्ग है; पराश्रय से उसका भेद जाना जाये, ऐसा नहीं है। यह तो चैतन्य का तलस्पर्श करने की बात है; बाह्यदृष्टि से मापे तो चैतन्य की गहराई का पता नहीं लगता। राग के पटल को चीरकर अतीन्द्रिय ज्ञान की अनुभूति के द्वारा अंतर के चैतन्यसमुद्र में उतरेगा तो आत्मा का पता लगेगा।

प्रश्नः—ज्ञानी आत्मा को कैसे पहिचाना जा सकता है ?

उत्तर:—ज्ञानस्वरूप आत्मा लक्ष्य में आये, तब अन्य ज्ञानी आत्मा की सच्ची पहिचान हो सकती है। राग से भिन्न होकर ज्ञान के लक्ष्य से ज्ञानी की सच्ची पहिचान हो सकती है; क्योंकि जिस शुद्धात्मा की जाति को जानना है, उसी जातिरूप स्वयं परिणमित हुए बिना उसकी सच्ची पहिचान नहीं हो सकती। ज्ञानस्वरूप आत्मा को जानने के लिये स्वयं में इन्द्रियातीत ज्ञानरूप परिणमन हो, तभी उसे पहिचाना जा सकता है।

(इसी लेख का शेष भाग आगे देखिये)

❀ ❀ ❀

अरे जीव! यदि परद्रव्य ही तुझे जबरन अशुद्धता कराता हो तो उस अशुद्धता से छूटने का अवसर कब आवेगा?—क्योंकि परद्रव्य तो जगत में सदा है; यदि वह विकार कराता हो, तब तो निरंतर विकार होता ही रहे और विकार से छूटने का अवसर ही कभी प्राप्त न हो।—इसलिये तेरा शुद्ध या अशुद्ध परिणमन तुझसे ही है—ऐसा तू जान ले तो शुद्धद्रव्य के आश्रय से शुद्धता प्रगट करके अशुद्धता को दूर करने का अवसर तुझे अवश्य आयेगा।

भला, तू इसमें क्या कर सकता है ?

जगत में जितने भी जीव बंध को प्राप्त होते हैं, वह अपने ही मिथ्यात्वादि भावों के द्वारा कर्म से बंधते हैं; तथा जो कोई भी जीव मोक्ष को प्राप्त करते हैं, वह अपने ही सम्यक्त्वादि वीतरागभाव से ही मुक्ति प्राप्त करते हैं।—तो हे जीव! तू उनका क्या कर सकता है ? पर को मैं बंधन करवा दूँ या बंधन से मुक्त करवा दूँ।—ऐसी मान्यता मिथ्या है। इसलिये इस मिथ्या मान्यता का त्याग कर दे। आत्मा तो ज्ञानस्वरूप है, उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट करना, यह निश्चय से मोक्षमार्ग है। जो जीव ऐसे वीतराग-मोक्षमार्ग में स्थित है, वही मोक्ष प्राप्त करते हैं; तथा राग में स्थित जीव बंधन को प्राप्त होते हैं। इसप्रकार बंध-मोक्ष जीव को अपने भावों से ही होता है, पर के द्वारा नहीं होता।

यह जीव ऐसी इच्छा करता है कि मैं सामनेवाले जीव को मोक्ष प्राप्त करा दूँ—किंतु सामनेवाला जीव रागभावरूप परिणमन करे तथा वीतरागभावरूप परिणमन नहीं करे तो वह मुक्त नहीं हो सकता किंतु बंधन को प्राप्त होता है। इस जीव का तो मुक्त करवाने का अभिप्राय था किंतु सामनेवाला जीव उसके अपने वीतरागभाव के बिना मुक्त नहीं हो सकता, अर्थात् इस जीव के अभिप्राय के अनुसार कार्य नहीं होता। इसलिये 'पर को मैं मुक्त करा दूं' ऐसा जीव का अभिप्राय निरर्थक है-मिथ्या है, स्वयं के लिये ही अनर्थ का कारण है। कदाचित् सामनेवाला जीव वीतरागभाव करके मुक्ति प्राप्त कर लेता है तो भी वह तो उसके अपने वीतराग भावों से ही मुक्त हुआ है—न कि इस जीव के अभिप्राय के द्वारा। इसलिये पर की कर्तृत्वबुद्धि असत्य है, मिथ्या है तथा दुःख का कारण है।

इस जीव का अभिप्राय हो या न हो, उसकी अपेक्षा के बिना ही सामनेवाला जीव अपने भावों के अनुसार बंध या मोक्ष को प्राप्त करता है।

इस जीव का अभिप्राय उसको मुक्त करवाने का नहीं हो तो भी सामनेवाला जीव यदि वीतरागभावरूप परिणमन करे तो वह अपने वीतरागभाव के द्वारा मुक्ति प्राप्त कर लेता है।

अब इसीप्रकार बंधन में:—कोई जीव ऐसी इच्छा करे कि मैं सामनेवाले जीव को बंधन में डाल दूँ। किंतु सामनेवाला जीव आत्मा का भान करके सम्यक्त्वादि वीतरागभावरूप परिणमन करे तथा सरागभावरूप परिणमन नहीं करे तो उसको बंधन नहीं होकर मुक्ति हो जाती है। इस जीव को तो उसको बंधन करवाने का अभिप्राय था किंतु सामनेवाला जीव अपने रागभाव के बिना बंधन को प्राप्त होता नहीं, अर्थात् इस जीव के अभिप्रायानुसार कार्य होता नहीं; इसलिये पर को मैं बंधन में डाल दूँ या दु:खी कर दूँ—ऐसा जीव का अभिप्राय निरर्थक है, मिथ्या है, तथा स्वयं के लिये ही अनर्थ का कारण है। कदाचित् उस समय सामनेवाला जीव उसके अपने रागादि भावों के द्वारा कर्म से बंधन को भी प्राप्त हो जावे या दु:खी हो जावे, तो भी वह तो उसके अपने रागादि भावों के कारण से ही दु:खी हुआ है;—नहीं कि तेरे अभिप्राय के अनुसार। इसलिये पर की कर्तृत्वबुद्धि असत्य है, मिथ्या है तथा दु:ख का कारण है।

इस जीव का अभिप्राय हो या न हो, उसकी अपेक्षा के बिना ही सामनेवाला जीव अपने भावानुसार बंध या मोक्ष को प्राप्त होता है।

यह जीव उसको बंधवाने का अभिप्राय नहीं करे तो भी सामनेवाला जीव जो रागादिभावरूप परिणमन करे तो वह अपने रागभाव के द्वारा बंध को प्राप्त होता है।

ऐसा स्पष्ट वस्तुस्वरूप समझाकर आचार्यदेव कहते हैं कि भाई!

सब जीव अध्यवसान कारण कर्म से बंधते जहाँ,
औ मोक्षमार्ग स्थित जीव होते मुक्त, तूं क्या करे भला?

''शक्तिमणित कोष''

(श्री अमृतचंद्रसूरिकृत एक अपूर्व ग्रंथ)

प्रौढ़ साहित्यरसिक प्राच्यविद्या के खोजी श्री पुण्यविजयजी महाराज द्वारा ताड़पत्र पर लिखा हुआ अति प्राचीन-ग्रंथ देखा गया। श्री अमृतचंद्रसूरि की इस कृति का उल्लेख किसी साहित्यकार की प्रस्तावना में आज तक नहीं मिला है, अत: प्रतीत हुआ कि यह कृति अज्ञात ही है। ग्रंथ का नाम है ''शक्तिमणित कोष-अपर नाम लघुतत्त्व स्फोट'' इसमें पच्चीस पच्चीस पद्यात्मक पच्चीस पच्चीसियाँ हैं। यह रचना यदि १०वीं शती की अमृतचंद्राचार्यकृत न मानी जाये तो भी जो ठक्कुर श्री अमृतचंद्राचार्य १२वीं शती के आसपास हुए हैं, उनकी कृति मानने में कोई बाधा नहीं है। एक कलश तो समयसारजी की आत्मख्याति टीका में है, अन्य भी होना चाहिये; पूर्ण ग्रंथ तो बहुत बड़ा है। यह रचना अलंकारिक, प्रौढ़ कठिन एवं प्रासादिक है। अहमदाबाद में श्री लालभाई दलपतभाई ग्रंथमाला से प्रकाशित होनेवाली थी, किंतु आज यह प्रति श्री पुण्यविजयजी महाराज की आज्ञा से संपादन की तैयारी में प्रोफेसर श्री पद्मनाभ एस. जैन C/o Dipt. of Linguistics the University of Michigan Ann Arbor Michigan, (U.S.A.) के पास है। मैंने उस प्रेस कोपी की माँग की थी; तो श्री पद्मनाभजी जैन ने १७ श्लोक देखने के लिये भेज दिये हैं; मुझे तथा मेरे सहयोगी अन्य विद्वानों को उसे देखकर अत्यंत प्रसन्नता हुई। वास्तव में अति उत्तम प्रौढ़ रचना है; यह ग्रंथ अमृतचंद्राचार्यकृत होना चाहिये, ऐसी संभावना और प्रसन्नता का विषय जानकर मैंने आत्मधर्म में छापने के लिये स्वीकृति माँगी तो सहर्ष विधिपूर्वक मिल गई है; ग्रंथ के १७ श्लोक निम्न प्रकार हैं:—

॥ॐ नम: परमात्मने॥ नमोऽनेकान्ताय॥

(वसंततिलका)

स्वायम्भुवं मह इहोच्छलदच्छ मीडे,
येनादिदेव भगवानभवत् स्वयम्भू:।
ॐ भूर्भुव: प्रभृतिसन्मननैकरूप-
मात्मप्रमातृपरमातृ न मातृ मातृ॥१॥

माताऽसि मानमसि मेयमसी शमासि
मानस्य चासिफल मित्यजितासि सर्वम्।
नास्त्येव किञ्चिदुत नासि तथापि किञ्चित्
अस्त्येव चिञ्चकचकायितचुञ्चरुच्चैः ॥२॥

एको न भासयति देव! न भासतेऽस्मिन्
अन्यस्तु भासयति किञ्चन भासते च।
तौ द्वौ तु भासयति सम्भव! भासते च,
विश्वं च भासयसि भा असि भासको न ॥३॥

यद्भाति भाति तदिहाय य भाति भांति
नाभाति भाति स च भाति नयो न भाति।
भाभाति भात्यपि च भाति न भात्यभाति,
सा चाभिनन्दनविभान्त्यभिनन्दतित्वाम् ॥४॥

(शार्दूलविक्रीडित)

स्पष्टीकृत्य हठात् कथं कथमपि त्वं यत् पुनः स्थाप्यसे
स्वामिन्नुत्कट कर्मकाण्डरभसाद भ्राम्यद्भिरन्तर्बहिः।
तद्देवैककलावलोकनवलप्रौढीकृतप्रत्ययै-
स्तुंगोत्सारगलत्स्वकर्मपटलैः सर्वोदितः प्रार्थ्यसे ॥१॥

देवावारकमस्ति किञ्चिदपि ते किञ्चिज्ज्ञगम्यं न यद्
यस्यासौ स्फुट एव भाति गरिमा रागादिरन्तर्ज्वलन्।
तद्वातायतपश्यतामहरहश्चण्डः क्रियाडम्बरो
स्पष्टः स्पष्टसमामृतस्तव किल स्पष्टत्वहेतुः क्रमात् ॥२॥

पूर्वासंयमसञ्चितस्य रजसः सद्यः समुच्छित्तये
दत्वादुर्द्धरभूरिसंयमभरयोरः स्वयं सादराः।
ये पश्यन्ति बलाद् विदार्य कपटग्रंथिं श्लथत्कस्मला-
स्ते विन्दन्ति निशातशक्तिसहजावस्थास्थमन्तर्म्महः ॥३॥

ये नित्योत्सहनात् कषायरजसः सान्द्रोदयस्पर्द्धक-
रेणीलंघन्लाघवेन लघयन्त्यात्मानमन्तर्बहिः।
ते विज्ञानधनीभवन्ति सकलं प्राप्य स्वभावं स्वयं।
प्रस्पष्टस्फुटितोपयोगगरिमग्रासीकृतात्मश्रियः ॥४॥

बाह्यान्तः परिवृत्तिमात्रविलसत् स्वच्छन्ददृक्सम्विदः
श्रामण्यं सकलं विगाह्य सहजावस्थां विपश्यन्ति ये।
पूर्वावाप्तमपूर्वतां सपदि ते साक्षान्नयन्तः समं
मूलान्येव लुनन्ति कर्मकुशलाः कर्मद्रुमस्य क्रमात् ॥५॥

ये गृह्णन्त्युपयोगमात्मगरिमग्रस्तान्तरुद्यद्रुण-
ग्रामण्यं परितः कषायकषणादव्यग्रगाढग्रहाः।
ते तत् तैक्ष्ण्यमखण्डपिण्डितनिजव्यापारसारं श्रिताः
पश्यन्ति स्वयमीशसान्तमहसः सम्यक् स्वतत्त्वद्भुतम् ॥६॥

चित्सामान्यविशेषरूपमितरत् संस्पृश्य विश्वं स्वयं
व्यक्तिष्वेव समन्ततः परिणमत् सामान्यमभ्यागताः।
अन्तर्बाह्यगभीरसंयमभरारम्भस्फुरज्जागराः
कृत्यं यत्तदशेमेव कृतिनः कुर्वन्ति जानन्ति च ॥७॥

चित्सामान्यमुदञ्च्य किञ्चिदभितो न्यञ्जन्निजव्यक्तिषु
स्पष्टीभूतदृढोपयोगमहिमा त्वं दृश्यसे केवलम्।
व्यक्तिभ्यो व्यतिरिक्तमस्ति न पुनः सामान्यमेकं क्वचिद्
व्यक्ताव्यक्तिभरः प्रसह्य रभसाद् यस्याशयाऽपोह्यते ॥८॥

बाह्यार्थे स्फुटयन् स्फुटस्य हरहस्त्वं यत् स्वभावः स ते
दृष्टः केन निरन्धनः किल शिखी किं क्वापि जातु ज्वलन्।
बाह्यार्थं स्फुटयन्नपि त्वमभितो बाह्यार्थभिन्नोदयः
प्रस्पष्टा स्फुटितोपयोगमहसा सीमन्ततः शोभसे ॥९॥

बाह्यार्थान् परिहृत्य तत्त्वरसनादात्मानमात्मात्मना
स्वात्मारामममुं यदीच्छति भृशं शंकोन्व कुब्जोऽस्तु मा।
क्षिप्यन्तं प्रसभं बहिर्मुहुरमुं निर्मथ्य मोहग्रहं
रागद्वेषविवर्जितः समदृशा स्वं सर्वतः पश्यतु॥१०॥

अच्छाच्छाः स्वयमुच्छलन्ति यदिमाः संवेदनव्यक्तयो
निष्पीताऽखिलभावमण्डलरसप्राग्भारमत्ता इव।
मन्ये भिन्नरसः स एश भगवानेकोऽप्यनेकी भवन्
वल्गत्युत्कलिकाभिरद्भुतनिधिश्चैतन्यरत्नाकरः॥२४॥

अर्थः—यह कलश-काव्य समयसारजी शास्त्र की आत्मख्याति टीका में अमृतचंद्राचार्य कृत कलश है (कलश नं. १४१ निर्जरा अधिकार) अर्थः—समस्त पदार्थों के समूहरूपी रस को पी लेने की अतिशयता से मानो मत्त हो गई हो ऐसी निर्मल से भी निर्मल निर्मलत्तर संवेदनव्यक्ति (-ज्ञानपर्याय, अनुभव में करनेवाले ज्ञान के भेद) अपने आप उछलती है, वह भगवान अद्भुत निधिवाला चैतन्यरत्नाकर ज्ञानपर्यायरूपी तरंगों के साथ जिसका रस अभिन्न है ऐसा एक होने पर भी अनेक होता हुआ, ज्ञानपर्यायरूपी तरंगों के द्वारा दोलायमान होता है-उछलता है। (१४१)

भावार्थः—[आत्मा को परमार्थ से एक ज्ञानरूप ही जानना चाहिये, खंड-खंडरूप से अनुभव नहीं करना चाहिये।]

ज्ञानाग्नौ पुटपाक एष घटतामत्यंतमंतर्बहिः
प्रारब्धोद्धतसंयमस्य सततं विष्वक् प्रदीप्तस्य मे।
येनाऽशेषकषायकिट्टगलनस्पष्टीभवद् वैभवाः
सम्यग् भान्त्यनुभूतिवर्त्मपतिताः सर्वाः स्वभावश्रियः॥२५॥

(वसंततिलका)

अस्याः स्वयं रभसि गाढनिपीडितायाः
संविद्विकाशरसवीचिभिरुल्लसन्त्याः।

आस्वादयत्वमृतचंद्रकवीन्द्र एष
हृष्यन् बहूनि भणितानि मुहुः स्वशक्तेः ॥१॥
स्याद्वादवर्त्मनि परात्मविचारसारे
ज्ञानक्रियातिशयवैभवभावनायाम् ।
शब्दार्थ संकटनसीम्नि रसातिरेके
व्युत्पत्तिमाप्तुमनसां दिगसौ शिशूनाम् ॥२॥
इत्यमृतचंद्रसूरीणां कृतिः शक्तिमणित कोशो रागलघुतत्त्वस्फोटः समाप्तः ॥

अरिहंत परमात्मा की सच्ची स्तुति

[अंक ३०३ से आगे]

(३५) भावेन्द्रिय अर्थात् इन्द्रियों की ओर झुका हुआ खंड-खंड ज्ञान, वह भी आत्मा का सच्चा स्वरूप नहीं है; अनुभव में आनेवाला जो एक अखंड ज्ञायकस्वभाव है, वह खंड-खंड ज्ञानरूप नहीं है, अर्थात् वह भावेन्द्रिय से भिन्न है। ऐसी भिन्नता का भान वही सर्वज्ञ की सच्ची स्तुति है। सर्वज्ञ की स्तुति स्वसन्मुखता से होती है।

(३६) अहा, चैतन्य वस्तु की ऐसी बात, उसका श्रवण, यह भी महा भाग्य से प्राप्त होता है। अमृत से भरा हुआ समुद्र आत्मा, उसका जिसको प्रेम जागृत हुआ, उसका अपूर्व कल्याण है। यहाँ दो प्रकार की क्रिया का वर्णन है—एक तो प्रतिमाजी में परमात्मा की स्थापना (प्राण-प्रतिष्ठा) करके पूजन करने की क्रिया का वर्णन चलता है; दूसरा-यह आत्मा स्वयं ही सर्वज्ञपद प्रगट करके परमेश्वर किसप्रकार हो सकता है, इस क्रिया का वर्णन चलता है।

(३७) दीक्षावन के वैराग्यमय वातावरण में मंगल-प्रवचन करते हुए स्वामीजी ने कहा:—भगवान ऋषभदेव आज मुनि हुए; वह दीक्षा लेने के बाद भी वैराग्य की बारह भावना भाते हैं। अहो, ऐसी मुनिदशा अलौकिक है। धर्मी उसकी भावना भाता है कि—

अपूर्व अवसर अेवो क्यारे आवशे! कयारे थईशुं बाह्यांतर निर्ग्रंथ जो...

(३८) चैतन्य के भानपूर्वक उसमें एकाग्र होने से देह की मूर्छा दूर हो गई, अंतर में मोहरहित दिगम्बर दशा तथा बाहर में भी वस्त्ररहित दिगम्बर दशा—ऐसी मुनिदशा की अनादि स्थिति है। चैतन्य के आनंद के उग्र अनुभव में मुनि लीन होता है। ऐसी मुनिदशा भगवान ने संसार की क्षणभंगुरता को देखकर आज धारण की है। संसार के संयोग तो बाह्य क्षणभंगुर हैं, उसमें यह चैतन्यतत्त्व ही अविनाशी रूप ध्रुव तथा शरण है। ऐसे आत्मा में लीन होकर केवलज्ञान की साधना करने के लिये भगवान ऋषभदेव आज मुनि हुए। ऐसी मुनिदशा को पहिचानकर उसकी भावना करने जैसी है।

['अपूर्व अवसर' काव्य के द्वारा स्वामीजी उस मुनिदशा का अत्यंत वैराग्य-पूर्वक स्मरण कर रहे थे। परम महिमावंत मुनिदशा की महिमा कर रहे थे, वैराग्यवन में पाँच हजार से भी अधिक श्रोता-जन शांतचित्त से वैराग्य भावना में झूल रहे हैं... एक ओर बड़े वटवृक्ष के नीचे मुनिराज ऋषभदेव निजध्यान में लीन होकर विराजमान हैं, चार ज्ञान का तेज मुद्रा के ऊपर चमक रहा है, अहा हम तो हमारे आनंद के समुद्र में मग्न हैं।]

(३९) आत्मा अंतर में शांति का सागर है, उसमें ऐसी एकाग्रता हो जाये कि बाहर में सिंह आकर के शरीर का भक्षण करते हों तो भी उसका लक्ष्य न रहे... जगत के पदार्थों का स्वभाव क्षणभंगुर है, उसमें हमको समभाव है। सड़ना-गलना यह तो पुद्गल का स्वभाव है, हम तो उसके ज्ञाता हैं। इसप्रकार ज्ञानस्वभाव की भावना से उसमें एकाग्र होकर मोह का नाश करके हमारा केवलज्ञान निधान हम प्रगट करेंगे। हमारे चैतन्य-पद की साधना करके हम केवलज्ञान प्रगट करके अशरीरी सिद्धपद की साधना करेंगे।

(४०) अरे, इस संसार में तो आत्मा के चिदानंदस्वभाव के अतिरिक्त सभी मंदिर, मकान

मूर्ति-शरीरादि किंचित् भी नित्य नहीं हैं; यह तो सभी काल के ईंधन हैं। संसार के पदार्थ तथा जन्म हुआ—माता के देखने से पहले ही पुत्र के शरीर की अनित्यता प्रारम्भ हो गई है, आत्मा ही आनंदकंद अविनाशी है। उसकी श्रद्धा-ज्ञान-रमणता करना यही जगत में सार है।

(४१) दोपहर को सर्वज्ञ भगवान की सच्ची स्तुति का (निश्चयस्तुति का) स्वरूप समझाते हुए कहा कि आत्मा शुद्ध ज्ञानचेतना गुण के द्वारा अन्य समस्त द्रव्यों से सर्वथा भिन्न है; शुद्ध ज्ञानचेतनारूप आत्मा के अनुभव के द्वारा समस्त अन्य द्रव्यों से भिन्नरूप अपने को जानता है, इसलिये पर के साथ एकताबुद्धिरूप मोह को जीत लिया है, वही आत्मा जितेन्द्रिय-जिन है; उसने सर्वज्ञ की सच्ची स्तुति की।

(४२) इस जीव के लिये अपना उपयोगस्वरूप आत्मा ही ध्रुव है, अन्य सभी अध्रुव हैं, किसी का संयोग नित्य रहनेवाला नहीं। आत्मा पवित्र ज्ञानचेतना से परिपूर्ण है, उसका अनुभव करने से परद्रव्य में कहीं भी मोह नहीं रहता। ज्ञानचेतना में राग का भी अभाव है। जहाँ ऐसी चेतनारूप आत्मा का अनुभव किया, वहाँ जड़ द्रव्य-इन्द्रियाँ खंड-खंड ज्ञानरूप भाव-इन्द्रियाँ, इसीप्रकार उनके विषयरूप बाह्य पदार्थ—इन तीनों से एकसाथ भिन्नता हो गई है। इस आत्मा को ज्ञानचेतना के अतिरिक्त अन्य कुछ भी हो, मंदिर-मूर्ति-शास्त्र अथवा अन्य आत्मा, यह आत्मा के स्व में डालने जैसा नहीं है। यह सभी परज्ञेय हैं। ऐसे अनुभव के द्वारा ही सर्वज्ञ की सच्ची स्तुति हो सकती है।

(४३) भाई, ऐसे आत्मा के अतिरिक्त अन्य तुझको किंचित् भी शरण नहीं है। श्री नेमिनाथ तीर्थंकर जब भरतक्षेत्र में विचरते थे, श्रीकृष्ण तथा बलभद्र जैसे वीर योद्धा तब द्वारिका के राजा थे, जब द्वारिका नगरी आग में धग-धग जलकर राख होने लगी... कृष्ण तथा बलभद्र अपने माता-पिता के रथ को भी दरवाजे से बाहर नहीं निकाल सके। जहाँ स्थिति पूरी हो, उसको कौन रोक सकता है ? यह तो सभी ज्ञान के विषय हैं, इनसे ज्ञान की सर्वथा भिन्नता है। अनित्य संयोग को नित्य रखना चाहे, किंतु जीव उनको नित्य नहीं रख सकता। संयोग से अधिक अर्थात् भिन्न ऐसा असंयोगी अविनाशी चेतना गुणों से पूर्ण मैं हूँ—ऐसा धर्मी अनुभव करता है।

(४४) प्रभु! यह तेरे सूक्ष्म चैतन्य तत्त्व की बात संत तुझे समझाते हैं। ऐसे तत्त्व को पहिचाने बिना विपरीत उपाय कर-करके संसार में अनंत युग व्यतीत हो गये किंतु मार्ग का अंत नहीं आया। सच्ची समझ का मार्ग ग्रहण करे तो संसार का अंत आये बिना रहे नहीं। पुण्यपरिणाम अनंत बार किये किंतु इससे भी कहीं भव का अंत आनेवाला नहीं है। भाई! जन्म-मरण को दूर करके मोक्ष प्राप्त करने का मार्ग ही अलौकिक है।

(४५) देखनेवाला जो ज्ञानस्वभावयप स्वयं है, वह स्वयं अपने को नहीं जानता; ज्ञान के विषयरूप ऐसे निकटवर्ती जो बाह्य ज्ञेय देव-गुरु-शास्त्र तथा स्त्री-शरीर-लक्ष्मी इनके साथ एकता मानता है। ज्ञानस्वभाव के अनुभव द्वारा भिन्नता को पहिचानना, यह धर्म है।

(४६) 'समयसार' अर्थात् शुद्ध आत्मा, वह कभी जलता नहीं; उसको कभी अग्नि लग नहीं सकती; अरे, कषायाग्नि का एक कण भी उसमें नहीं। समयसार अर्थात् शुद्ध आत्मा; उसके असंख्य प्रदेश कभी क्षीण नहीं होते, उसकी ज्ञानचेतना में रागरूपी अग्नि प्रवेश नहीं कर सकती। बाहर के-जड़ के संयोग तो आते और जाते हैं, किंतु समयसार ऐसा जो भगवान आत्मा, अपने चेतनास्वभाव से अविनाशीरूप विराजमान है। ऐसा आत्मा बाह्य विषयों से दूर है, भिन्न है। ऐसी पहिचान करना, यह भगवान की भी निश्चयस्तुति है।

(४७) जिससे जीव को बंधन हो, वह धर्म नहीं; जो धर्म है, उससे बंधन नहीं होता। सम्यग्दृष्टि को ही तीर्थंकर नामकर्म का बंध होता है, फिर भी इस बंध का कारण सम्यग्दर्शन नहीं है; सम्यग्दर्शन के साथ जो राग है, वही बंध का कारण है। अत: सर्वप्रकार का राग बंध का ही कारण है, वह कहीं मोक्ष का कारण नहीं। इसप्रकार बंधभावों से भिन्न आत्मा को पहिचानना, यह सर्वज्ञ का मार्ग है, यह अरिहंत की स्तुति है।

(४८) जितने पराश्रित व्यवहारभाव हैं, उन सभी से धर्मी अपने को निश्चय से भिन्न मानता हुआ ज्ञानचेतना मात्र का अनुभव करता है। किसी भी व्यवहार में अर्थात् पराश्रित भाव में तन्मयबुद्धि का होना मिथ्यात्व है। धर्मी जीव सभी पराश्रयभावों से मुक्त है, भिन्न है। ऐसा भान होते हुए भी साधकदशा में धर्मी को ज्ञान से भिन्न शुभराग आता है; अर्थात् वीतराग भगवान की भक्ति आदि का भाव आता है, यह व्यवहारस्तुति है तथा अंतर में जो वीतरागदशा हुई, वह परमार्थस्तुति है।

(४९) तीर्थंकर होनेवाला जीव जब माता के गर्भ में आता है, तब इन्द्र आकर उस माता का सम्मान-पूजन करके कहते हैं कि—हे रत्नकुक्षिधारिणी माता! तुम तो जगत की माता हो, तुम्हारा तो पुत्र है किंतु जगत का यह नाथ है। हे माता! ऐसे जगतारणहार को उदर में धारण करने से आप भी जगतपूज्य हो। भगवान के माता-पिता भी मोक्षगामी होते हैं।

(५०) माता के उदर में भी भगवान का आत्मा यह जानता था कि यह देह है, वह मैं नहीं हूँ; मैं तो अपने असंख्य प्रदेश में अनंतगुण से परिपूर्ण हूँ।—ऐसे स्वरूप से भगवान अपने को पहिचानते थे, तथा ऐसे स्वरूप से भगवान को पहिचानना, यही सच्ची स्तुति है।

(५१) इसी भव में केवलज्ञान प्रगट करके जो परमात्मा होनेवाले हैं तथा इन्द्र जिनकी जन्म होने से पहले भी सेवा करते हैं—ऐसे तीर्थंकर को केवलज्ञान के बाद आहार अथवा निहार कुछ भी नहीं होता; निहार (मल-मूत्र) तो जन्म से ही उनके नहीं होता, उनका शरीर तो दिव्य होता है, उनको रोग नहीं होता, पसीना नहीं होता; केवलज्ञान के बाद आहार भी नहीं ग्रहण करते।

(५२) भगवान का अवतार होने के बाद मेरुपर्वत पर इन्द्र उनका जन्माभिषेक करता है, एक सहस्र नेत्र बनाकर एकटक प्रभु का रूप देखता रहता है—ऐसा अद्भुत रूप होता है। इसप्रकार इन्द्र ने प्रभु को देखा, तब उसके नेत्रों की सफलता हुई। इसीप्रकार अंतर्मुख होकर ज्ञानचक्षु के द्वारा जब अंतर में अपने परमात्मा को देख ले, तब जीव के ज्ञानचक्षु की सफलता कहलाती है।

(५३) मेरुपर्वत तो शाश्वत-अनादि है, सूर्य-चंद्र अनादि से उसकी प्रदक्षिणा देते हैं; किंतु भक्ति के अलंकार से मुनिराज कहते हैं कि हे नाथ! मेरु पर जब आपका जन्माभिषेक हुआ, तब वह महान तीर्थ बना, इसलिये सूर्य-चंद्र भी उसकी निरंतर प्रदक्षिणा देने लगे हैं; इसीप्रकार आत्मा के स्वभाव में तो अनंत दर्शन-ज्ञान-आनंद है ही, किंतु उसका भान करके जब सम्यग्दर्शन-ज्ञान-आनंद प्रगट किये, तब आत्मा स्वयं तीर्थ बना। इसप्रकार तिरने का उपाय प्रगट करके अपने आत्मा को परमात्मा बनाने की यह बात है।

(५४) राग में राग है, ज्ञान में राग नहीं। ज्ञान तथा राग का भिन्न स्वरूप पहिचानकर धर्मी अपने को ज्ञानरूप अनुभव करता है, राग को परज्ञेयरूप जानता है। ऐसे अखंड ज्ञान के अनुभव द्वारा धर्मी ने अनादि कर्मधारा को खंड-खंड कर दी है; आचार्यदेव अलंकार

से कहते हैं कि हे नाथ! इन्द्र ने जब आपकी भक्ति के साथ ताण्डव नृत्य किया, तब उसके हाथों के स्पर्श से इन बादलों के टुकड़े-टुकड़े हो गये, जो टुकड़े आज भी आकाश में घूम रहे हैं; इसीप्रकार अंतर के ज्ञान द्वारा आपकी भक्ति करते हुए हमारे कर्मरूपी बादलों के भी टुकड़े-टुकड़े हो गये हैं।

(५५) स्वानुभव के द्वारा धर्मी को असंख्यप्रदेशी चैतन्य-पृथ्वी में अनंत गुण के अंकुर फूटे हैं, क्योंकि चैतन्यनाथ की प्राप्ति से वह सनाथ बन गये हैं। पर्याय में पहले आनंद का दुष्काल था, किंतु हे नाथ! आपने कहे हुए आत्मा का भान करके जब अनुभव किया, वहाँ अनंतगुण की पर्याय में निर्मल अंकुर फूटे, आनंद का बगीचा लहराने लगा। धर्मी को अंतर में ऐसी दशा प्रगट होती है, जिसकी स्वयं को खबर पड़ती है।

(५६) उपयोगस्वरूप आत्मा है, वह स्वयं ही आत्मा के लिये ध्रुव है; ऐसे ध्रुवस्वभाव को दृष्टि में लेकर परिणमन करना, बीच में आनेवाले अध्रुव संयोगी भावों में नहीं अटकना। परभावों का स्पर्श किये बिना अंतर में जाकर स्वयं अपने स्वभाव में ध्रुवरूप से गति करना, यह महामंगल है।

(५७) जिसप्रकार रास्ते चलनेवाला मुसाफिर, बीच में आनेवाली अनेक वृक्षों की छाँह में रुकता नहीं, वह तो अपनी गति से चला ही जाता है; उसीप्रकार निजस्वरूप को ध्येय बनाकर मोक्ष के रास्ते चला जानेवाला मुमुक्षु, बीच में वृक्ष की छाँह जैसे अध्रुव भावों में नहीं रुकता; वह तो ध्रुव उपयोगस्वरूप आत्मा को ध्येय बनाकर मोक्षपुरी की ओर चला जाता है.... आनंद का वेदन करता-करता वह अपने सिद्धपद की साधना कर लेता है।

(५८) जिसप्रकार दौज का चंद्र वृद्धि को प्राप्त होता हुआ पूर्णिमा (पूर्ण) होता है; उसीप्रकार अंतरस्वभाव को ध्येय बनाकर जो ज्ञान-दौज आनंद सहित प्रगट हुई, वह स्वभाव के ध्येय से आगे वृद्धिगत होती हुई पूर्ण आनंद सहित पूर्णिमा होगी।

(५९) एक अखंड ज्ञायकस्वभावी आत्मा, उसका जब वेदन करता है, तब द्रव्यइन्द्रियों से अपने को भिन्न अनुभव करता है। अज्ञानी अपने ज्ञान को परज्ञेयों के साथ एकमेक होना मानकर खिचड़ी करके अपने भिन्न ज्ञान के स्वाद को भूल जाता है। ज्ञान के भान

बिना व्यवहाररत्नत्रय का शुभराग करे तो भी अज्ञान के कारण जीव पाप में ही पड़ा हुआ है, क्योंकि निजस्वरूप से वह भ्रष्ट है; जिन के मार्ग का उसको ज्ञान नहीं है।

(६०) अहो, जिन का मार्ग अलौकिक है! यह तो स्वभाव के आश्रयरूप वीतरागमार्ग है, उसमें पराश्रय नहीं है। पर की अपेक्षा बिना ज्ञानस्वभाव से भरा हुआ भगवान आत्मा, उसका जिसको भान है, वह मोह को जीतनेवाला जिन है। वह मार्ग में आया; उसने अपनी प्रभुता अपने में ही देख ली। (—शेष अगले अंक में)

विविध समाचार

सोनगढ़ (सुवर्णपुरी) समाचार

तारीख ३०-९-७०:—परमोपकारी पूज्य स्वामीजी सुख-शांति में विराजमान हैं। प्रतिदिन सवेरे अष्टपाहुड़ पर तथा दोपहर को समयसारजी शास्त्र पर प्रवचन होते हैं। तुदपरांत दोपहर को १ से २ बजे तक श्री रामजीभाई के निवासस्थान पर पंचाध्यायी का स्वाध्याय होता है। जिसमें अनेक मुमुक्षु भाग लेते हैं। दसलक्षण पर्व में मंडल विधान सहित जिनेन्द्र भगवान की पूजा, व्रतादि उत्सव, रथयात्रा, जिनवाणी की रथयात्रा पूजन भक्ति आदि कार्यक्रम थे। आगम मंदिर बहुत सुंदर उत्तम ढंग से तैयार हो रहा है; करीब आधा कार्य संपन्न हो गया है। दिगम्बर जैन धर्मशाला में नये ब्लॉक बन रहे हैं।

❀ ❀ ❀

पर्यूषण पर्व-समाचार

इस साल पर्यूषण पर्व पर विद्वानों को भेजने की माँग के पत्र अनेक स्थानों से श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रसट सोनगढ़ के नाम आये थे। माँग बहुत थी, परंतु कुछ ही स्थानों पर विद्वानों को भेजा जा सका। समाचार निम्न प्रकार आये हैं:—

उदयपुर (राज.)—हमारी प्रार्थना पर श्री जवाहरलालजी (विदिशा) को भेजा गया। इसके लिये हम सभी मंडल के आभारी हैं। आपने हमेशा प्रात: जिनेन्द्र-पूजा में एक नवीनता का वातावरण कर दिया, हमेशा ९ से १० मोक्षमार्गप्रकाशक पर प्रवचन तथा २ से ३ तक श्री समयसारजी पर एवं रात्रि को ७ से ९ तक दस धर्मों पर निश्चयव्यवहार से विवेचन होता था, समाज में अपूर्व जागृति उत्पन्न हुई, इन दिनों में श्री दिगम्बर जैन चंद्रप्रभुजी मंदिर में दसलक्षण, सोलहकारण, रत्नत्रय, पंचमेरु आदि मंडल विधान बड़े ठाठ से किया गया था। श्री जवाहरलालजी का तथा सोनगढ़ का आभार प्रगट किया।

—सुंदरलाल महेता, अध्यक्ष, दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल

इटावा (उ.प्र.) ब्रह्मचारी हेमराजजी को पर्व पर भेजकर जैन समाज को नयी चेतना दी। हम आपकी संस्था एवं स्वामीजी के आभारी हैं। ब्रह्मचारीजी द्वारा इन दिनों में अच्छी प्रभावना हुई। जैन-अजैन सभी ने उनके प्रवचनों में एवं तत्त्वचर्चा में भाग लिया, सबसे बड़ा पाप मिथ्या अभिप्राय मेटने के लिये भार देकर जो उपाय समझाया, उससे सभी बहुत प्रसन्न हुए। क्षमावाणी पर्व से ही जैन शिक्षण शिविर समाज की प्रार्थना से चालू कर दिया है।

— चंद्रप्रकाश जैन, राजागंज-इटावा

कलकत्ता:—हमारे निमंत्रण पर पंडित श्री खेमचंदभाई को भेजकर बहुत-बहुत उपकार किया है। श्री खेमचंदभाई की व्याख्यान-शैली अत्यंत सरल स्पष्ट और आकर्षक होने से श्रोताओं की मंत्रमुग्ध कर देती थी। श्वेताम्बर समाज ने भी बहुत लाभ लिया। सवेरे समयसारजी, दोपहर की तत्त्वचर्चा, शंका-समाधान तथा शाम को प्रवचनसार का कार्यक्रम रखा था। तारीख १६-९-७० को श्री खेमचंदभाई गोहाटी पधारे हैं; वहाँ से तारीख २४-९-७० को बम्बई के लिये प्रस्थान करेंगे। *—वीरचंद कानजी मंत्री*

महीदपुर (म.प्र.)—हमारी प्रार्थना से पंडित लक्ष्मीचंदजी जैन शहादरावाले पधारे थे। १० दिनों तक प्रात:काल से रात्रि ११.०० बजे तक होनेवाले धार्मिक कार्यक्रम का समाज ने बड़े उत्साह सहित लाभ लिया। अजैन भाईयों ने भी लाभ लिया। *—धर्मचंद सोगानी*

मलकापुर (म.प्र.)—हमारे आमंत्रण से फतेपुर निवासी श्री चंदुभाई पधारे थे। पर्व में हमेशा सुंदर पद्धति से पूजा, भक्ति, प्रवचन, शंका-समाधान, शिक्षण-कक्षाएँ आदि मिलकर आठ घंटे तक कार्यक्रम चला। समस्त दिगम्बर जैन समाज पूज्य स्वामीजी की तथा सोनगढ़

संस्था की अत्यंत आभारी है। *— बालचंदसा*

बुलन्दशहर (उ.प्र.)—दसलक्षण धर्म पर्व बड़े उत्साह से मनाया गया। शास्त्रसभा में वक्ता श्री मुकुटलालजी तथा श्री सुलतानसिंहजी थे। *—शीतलप्रसाद जैन*

मंडी बामोरा:—पर्व पर यहाँ पंडित मोतीलालजी आरोन से पधारे, आध्यात्मिक प्रवचनों के उपरांत मुमुक्षु मंडल की स्थापना हुई; समाज आपका बहुत आभार प्रगट करती है। आत्मधर्म के ग्राहक भी बने। *—सुंदरलाल विमलकुमार*

नागपुर (महा.)—देहली से पंडित प्रकाशचंद्रजी संपादक 'सन्मति संदेश' हमारे आमंत्रण से पधारे। आपके द्वारा प्रवचन, शंका-समाधानादि कार्यक्रम दोनों बड़े मंदिरजी में होता था। आपने हेय-उपादेय, निश्चय-व्यवहार का जो निरूपण आगमोक्त प्रमाण से किया, उसे सुनकर जन-समुदाय मंत्रमुग्ध हो जाता था। विपरीत मान्यता दूर करने के लिये आपने सभी को सुंदर ढंग से समझाया; जिससे अनेक जिज्ञासुओं ने गलत परंपरा को छोड़ शुद्ध आम्नायानुसार जैनधर्म की शिक्षा ग्रहण की। मुमुक्षु मंडल के चतुर्थ अधिवेशन में उत्तम मार्गदर्शन किया। मंडल द्वारा संचालित वीतराग विज्ञान पाठशाला में उत्तीर्ण छात्रों को प्रमाणपत्र वितरण समारोह हुआ। समाज आपके प्रवचनों से अत्यधिक प्रभावित हुई है।

—शिखरचंद बड़कुल

दिल्ली—महावीर नगर जैन मुमुक्षु मंडल सदर बाजार में पर्यूषण पर्व बड़े उत्साहपूर्वक मनाया, श्री दिगम्बर जैन खंडेलवाल समाज के निमंत्रण से लश्कर निवासी पंडित पन्नालालजी पधारे थे। आपके प्रवचनों का तथा शंका-समाधान का अच्छा लाभ लिया। तारीख १२-९-७० को नवीन दिगम्बर जैन मंदिर का शिलान्यास भारतनगर में ला. प्रेमचंद जैन (जैन वाच कं.) द्वारा हुआ; लालमंदिरजी में प्रवचन हेतु आमंत्रण आया था। वहाँ ४ प्रवचन दिये थे। वीतराग विज्ञान पाठमाला की पुस्तकें अल्प मूल्य में मंडल द्वारा दी गई। आत्मधर्म मासिक पत्र के १९ आजीवन सदस्य बने। श्री पंडित धन्नालालजी को सम्मान-पत्र दिया गया एवं आभार-विधि हुई।

पंडितजी द्वारा धर्मपुरा, नया मंदिरजी तथा मोडल बस्ती जिनमंदिर में भी प्रवचन कराये गये थे। *—रविचंद्र जैन*

❀ ❀ ❀

शहादरा (दिल्ली)—श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल शहादरा के अनुरोधवश पंडित श्री धन्नालालजी तारीख १५-९-७० को पधारे। जैन समाज की भारी उपस्थिति में सुंदर कथनपद्धति द्वारा प्रवचन दिया। समाज ने बहुत ही प्रेमपूर्वक प्रशंसा की, आभार प्रगट किया। जैन तत्त्वज्ञान को स्पष्टतया प्रगट करने से जनगण के हृदय को छू जानेवाली निर्मल ज्ञान विराग प्रसादी प्राप्त हुई; डंके की चोट पर कहा कि सुखी होने के लिये यही सही मार्ग है। इसलिये हम शहादरा निवासी पंडितजी के बहुत आभारी हैं। आपके प्रवचन के लाभ लेने शहादरा से प्रतिदिन दिल्ली में भी जाकर अनेक मुमुक्षुगण सत्य को समझने में योग्य बने। उसके मूल में परोपकारी पूज्य श्री कानजीस्वामी का हम सभी आभार प्रगट करते हैं।

—दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल, शहादरा

भिंड (म.प्र.)—हमारी प्रार्थना पर बम्बई से माननीय श्री पंडित हिम्मतभाई पर्यूषण पर्व पर हमारे यहाँ पधारे। अपने पुण्य के उदय से हमें उनका संयोग हुआ। उनके आने से समाज को जो लाभ हुआ, उसे हम शब्दों में नहीं लिख सकते। पंडितजी तारीख ४-९-७० से १६-९-७० तक हमारे नगर में रहे। आपके आध्यात्मिक भावपूर्ण प्रवचनों से अपूर्व धर्मप्रभावना हुई। लोग कहते हैं कि ऐसा धार्मिक वातावरण हमने अपने यहाँ पहले कभी नहीं देखा। पंडितजी ने अपने प्रभावशाली कार्यक्रमों से धार्मिक चेतना का संचार किया। प्रात: ८ से ९ बजे तक 'श्री समयसार' कर्ताकर्म अधिकार पर प्रवचन करते थे; दोपहर को २ से ३ बजे तक 'लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका' पढ़ाते थे। सायंकाल ३ से ४ बजे तक शंका-समाधान का कार्यक्रम चलता था। रात्रि को ८ से ९ बजे तक 'मोक्षमार्गप्रकाशक' के सातवें अधिकार पर प्रवचन होता था। प्रत्येक कार्यक्रम में लोग अच्छी संख्या में उपस्थित होते थे। पंडितजी के उपदेश से प्रभावित होकर आत्मधर्म के १०१ ग्राहक बने। तारीख १६-९-७० को प्रात:काल प्रवचन के पश्चात् विशाल जनसमुदाय के बीच श्री जिलाधीश महोदय की अध्यक्षता में पंडितजी को अभिनंदनपत्र दिया गया और उसी दिन शाम को पंडितजी ने मौ के लिये प्रस्थान किया। भिंड की जैन समाज ने आपको हार्दिक विदाई दी।

— दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल एवं समस्त जैन समाज भिंड

मौ (भिण्ड)—तीन वर्ष तक प्रयत्न के बाद इस वर्ष हमारे आमंत्रण पर श्री ब्रह्मचारी रमेशचंदजी पधारे। आप प्रतिदिन करीब छह घंटे तक प्रवचन, शिक्षण कक्षा एवं पूज्य

स्वामीजी के प्रवचनों के टेपरेकार्ड द्वारा लोगों में धार्मिक जागृति उत्पन्न करते थे। आप ट्रस्ट के अध्यक्ष श्री नवनीतलाल चुनीलाल जवेरी की ओर से देश में अनेक स्थानों पर भ्रमण करके धर्मप्रचार करते हैं। वर्तमान काल में परमोपकारी अध्यात्मयुग पुरुष श्री कानजीस्वामी जो सत्यधर्म का उपदेश दे रहे हैं, उसका प्रचार आज देश के कोने-कोने में हो रहा है, यह जीवों का महान सद्भाग्य है। दो दिन के लिये श्री पंडित हिम्मतभाई बम्बईवाले भी पधारे थे। उनके आध्यात्मिक प्रवचनों का हमारे यहाँ की जैन तथा जैनेतर जनता ने भी अच्छा लाभ लिया। वीतराग विज्ञान पाठशाला के छात्रों द्वारा श्री शांतिकुमारजी अध्यापक के मार्गदर्शन में नाटक संवाद आदि कार्यक्रम प्रस्तुत किये गये। अंतिम दिन श्री पंडित हिम्मतभाई एवं ब्रह्मचारी श्री रमेशचंद्र को अभिनन्दनपत्र दिये गये तथा परम पूज्य श्री कानजीस्वामी एवं प्रमुख श्री नवनीतभाई के प्रति भी हार्दिक आभार व्यक्त किया। — *श्री दिगम्बर जैन समाज मौ (भिण्ड)*

भिण्ड से ब्रह्मचारी श्री रमेशचंद्रजी लिखते हैं कि श्री पंडित हिम्मतभाई (अध्यक्ष-प्रचार विभाग श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़) पर्यूषण पर्व में भिण्ड पधारे थे। उन्होंने मुझे मौ के पश्चात् भिण्ड जाने का आदेश दिया। भिण्ड से दो सज्जन मुझे लेने आये थे। भिण्ड का आमंत्रण पिछले तीन वर्षों से आ रहा था। यहाँ दिगम्बर जैनों की संख्या करीब दस हजार है, और धार्मिक रुचि होने से पूज्यश्री कानजीस्वामी के प्रति सबको महान आदरभाव है।

❀ ❀ ❀

अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन समिति के अध्यक्ष दानवीर साहू शांतिप्रसादजी जैन की जैन समाज से पर्यूषण पर्व पर मार्मिक अपील

भगवान महावीर के २५००वें निर्वाणोत्सव की तैयारी का यह पहला दशलक्षणी पर्व है। इस वर्ष सभी जैनियों ने मिलकर निश्चय किया है कि २५००वें निर्वाण की तिथि पर भगवान की वाणी का प्रचार और प्रसाद हो।

इस दशलक्षणी पर्व में यह जो सामूहिक निर्णय है, उसे मूर्तरूप देने के लिये हर जैनी को चाहे वह पुरुष, स्त्री या बच्चा हो, नित्य कम से कम एक पैसा त्याग करने के लिये विचारवद्ध होना है। इस दशलक्षणी पर्व पर मैं सबसे अपील करता हूँ कि इस सामूहिक निर्णय में वे अपनी शक्ति के अनुसार योग दें।

सुझाव भेजें—भगवान महावीर की २५००वीं निर्वाण-तिथि किसप्रकार मनायी जाये। इस संबंध में आपके जो भी सुझाव हों स्वयं या पंचायत द्वारा समिति को लिखें। समिति उन पर पूरा विचार करेगी।

—शांतिप्रसाद जैन

निवेदक—

परसादीलाल पाटनी

प्रधानमंत्री, अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन समिति, नई सड़क, दिल्ली

—: सूचना :—

जिन सज्जनों की ओर से हमें पुस्तकों के आर्डर मिले थे, उन्हें पुस्तकें रवाना कर दी गई थी; परंतु पिछले महीने गुजरात में अतिवृष्टि के कारण रेलों का आवागमन रुक जाने से पहुँचने में विलंब हो रहा है। पत्रों के उत्तर दे दिये गये हैं।

— श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़

मैं शुद्धनय द्वारा
नित्य ज्ञानानंद स्वभावी हूँ

(पंडित हुकमचद भारिल्ल, जयपुर)

मैं हूँ अपने में स्वयं पूर्ण,
पर की मुझमें कुछ गन्ध नहीं।
मैं अरस अरूपी अस्पर्श,
पर से कुछ भी संबंध नहीं॥

मैं रंग-राग से भिन्न भेद से,
भी मैं भिन्न निराला हूँ।
मैं हूँ अखंड चैतन्यपिण्ड,
निज रस में रमनेवाला हूँ॥

मैं ही मेरा कर्ता-धर्ता,
मुझमें पर का कुछ काम नहीं।
मैं मुझमें रहनेवाला हूँ,
पर में मेरा विश्राम नहीं॥

मैं शुद्ध, बुद्ध, अविरुद्ध एक,
पर परिणति से अप्रभावी हूँ।
आत्मानुभूति से प्राप्त तत्त्व,
मैं ज्ञानानंद स्वभावी हूँ॥

विश्वतत्त्वों का सत्यस्वरूप सम्यक् अनेकांत द्वारा बतलाकर सच्चा समाधान, एवं अपूर्व शांति का उपाय दर्शानेवाले—

सुरुचिपूर्ण प्रकाशन

१	समयसार	(प्रेस में)
२	प्रवचनसार	४.००
३	समयसार कलश-टीका	२.७५
४	पंचास्तिकाय-संग्रह	३.५०
५	नियमसार	४.००
६	समयसार प्रवचन (भाग-४)	४.००
७	मुक्ति का मार्ग	०.५०
८	जैनसिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला भाग-१	०.७५
	'' '' '' भाग-२	१.००
	'' '' '' भाग-३	०.५०
९	चिद्विलास	१.५०
१०	जैन बालपोथी	०.२५
११	समयसार पद्यानुवाद	०.२५
१२	द्रव्यसंग्रह	०.८५
१३	छहढाला (सचित्र)	१.००
१४	अध्यात्म-संदेश	१.५०
१५	नियमसार (हरिगीत)	०.२५
१६	धर्म के संबंध में अनेक भूलें	बिना मूल्य
१७	अष्ट-प्रवचन	१.५०
१८	मोक्षमार्गप्रकाशक	२.५०
१९	अपूर्व अवसर-प्रवचन	१.५०
२०	पण्डित टोडरमलजी स्मारिका	१.००
२१	बालबोध पाठमाला, भाग-१	०.४०
२२	बालबोध पाठमाला, भाग-२	०.५०
२३	बालबोध पाठमाला, भाग-३	०.५५
२४	वीतरागविज्ञान पाठमाला, भाग-१	०.५०
२५	वीतरागविज्ञान पाठमाला, भाग-२	०.६५
२६	वीतरागविज्ञान पाठमाला, भाग-३	०.६५
	छह पुस्तकों का कुल मूल्य	३.२५
२७	लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका	०.२५
२८	सन्मति संदेश (पूज्य श्री कानजीस्वामी विशेषांक)	०.५०
२९	मंगल तीर्थयात्रा (गुजराती-सचित्र)	६.००
३०	जैन बालपोथी भाग-२	०.४०

प्राप्तिस्थान :

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट,

सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट सोनगढ़ के लिये प्रकाशक एवं मुद्रक :

मगनलाल जैन, अजित मुद्रणालय, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)